युवराज

श्रीमद्वरदराजाचार्यप्रणीता

# लघुसिद्धान्तकौमुदी

(समास प्रकरणम्)

[बी० ए०, एम० ए०, समकक्ष संस्कृत एवं
प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए]

आचार्यवरदराज प्रणीत

# लघुसिद्धान्तकौमुदी

## (समास प्रकरणम्)

(प्रत्येक सूत्र का अर्थ, उनकी व्याख्या एवं समस्त
शब्दों की सिद्धि का सरल और स्पष्ट वर्णन)

छात्रोपयोगी एवं परीक्षोपयोगी संस्करण

सम्पादक एवं व्याख्याकार
**डॉ० अशोक कुमार यादव**
एम० ए०, पी-एच० डी०, यू० जी० सी० नेट
संस्कृत विभागाध्यक्ष
श्री गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मालटारी (आजमगढ़)

युवराज पब्लिकेशन्स, आगरा—2

## दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भ में व्याकरण से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी एवं व्याकरण के प्रसिद्ध आचार्यों का जीवनवृत्त संक्षेप में दिया गया है।

पुस्तक में यह प्रयत्न किया गया है कि प्रत्येक सूत्र, उन सूत्रों के अर्थ, उनकी व्याख्या एवं शब्दों की रूप सिद्धि को इस प्रकार सरल और सुबोध बनाया जाय कि विद्यार्थियों को सरलता से बोध गम्य हो सके। साथ ही यथास्थान आवश्यक निर्देश भी दिये गये हैं जिससे विषय स्पष्ट हो सके। अन्त में परीक्षोपयोगी बहुविकल्पीय, अतिलघुउत्तरीय, लघु उत्तरीय एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्न भी दिये गये हैं जो विद्यार्थियों के मार्गदर्शन में सहायक होंगे।

इस पुस्तक को पूर्णता प्रदान करने में पं० श्री धरानन्द शास्त्री, आचार्य डॉ० सुरेन्द्र देव स्नातक 'शास्त्री' एवं पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी द्वारा सम्पादित लघुसिद्धान्तकौमुदी अति सहयोगी सिद्ध हुई हैं। मैं इन सभी विद्वानों के प्रति सहृदय आभार प्रकट करता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादन में अनेक विद्वानों से सहायता प्राप्त हुई है उनमें सर्वप्रथम मैं अपने गुरुदेव डॉ० स्वामीनाथ गुप्त के समक्ष प्रणत् हूँ जिनकी अनुकम्पा से इस ग्रन्थ का लेखन कार्य हुआ। साथ ही इस ग्रन्थ के लेखन में स्थूल एवं सूक्ष्म की समझ रखने वाले गुरुदेव डॉ० प्रेम बहादुर सिंह एवं डॉ० रामनाथ यादव के प्रति श्रद्धावनत् प्रणत् हूँ जिनके बहुमूल्य सुझावों ने ग्रन्थ को उपादेय बनाया है। और आशा करता हूँ कि इससे प्राध्यापक एवं विद्यार्थीगण अवश्य लाभान्वित होंगे। अन्त में मैं युवराज पब्लिकेशन्स, आगरा के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन का दायित्व वहन किया है।

प्रस्तुत संस्करण के सम्पादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो सुधीजनों के उपयोगी सुझावों का सम्मान किया जायगा।

**—अशोक कुमार यादव**

# विषयानुक्रमणिका



✤

# भूमिका

भाषा अभिव्यक्ति का वह सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति न केवल विचारों की प्रस्तुति करता है बल्कि इसी भाषा से मानव ज्ञान के उस गहनतम् और उच्चतम् शिखर पर पहुँचता है, जिसकी कल्पना मानव मस्तिष्क में कहीं न कहीं अमूर्त रूप में रहती है। जिसको रूप देने के लिए मानव में विचारों का संघर्ष चलता रहता है। उन विचारों में शुद्धता एवं पवित्रता का ज्ञान, भाषा यानी व्याकरणिक ज्ञान द्वारा ही सम्भव है अर्थात् भाषा की समझ के लिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि इसके बिना शब्दार्थ बोध भी नहीं हो सकता है और बिना अर्थ के समझे प्रतिभा का प्रयोग भी नहीं हो सकता है। इसीलिए अभिनवगुप्त ने कहा था ''प्रथमो हि विद्वांसः वैयाकरणः'' अर्थात् वैयाकरण ही प्रथम विद्वान हैं।

'मुखं व्याकरणं स्मृतम्' व्याकरण को वेदपुरुष का मुख माना जाता है। मुख अभिव्यक्ति और विश्लेषण का साधन है, तद्वत् व्याकरण भी पद-पदार्थ एवं वाक्य-वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति तथा प्रकृति-प्रत्यय के विश्लेषण का साधन है। अतएव व्याकरण का अर्थ है -'व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्', जिसके द्वारा प्रकृति-प्रत्यय का विवेचन किया जाता है। यजुर्वेद में व्याकरण के सूक्ष्म रूप का वर्णन है कि प्रजापति ने रूपों में सत्य और अनृत (स्फोट और ध्वनि) का व्याकरण (विश्लेषण) किया। उसने असत्य में अश्रद्धा और सत्य में श्रद्धा की प्रतिष्ठा की।

**दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।**
**अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाँ् सत्ये प्रजापतिः।।**

(यजु० १९-७७)

कात्यायन और पतञ्जलि ने व्याकरण के पाँच प्रयोजन बताये हैं— १. रक्षा (वेदों की रक्षा) २. ऊह (यथास्थान विभक्तियों आदि का परिवर्तन) ३. आगम (निष्काम-भाव से वेदादि का अध्ययन) ४. लघु (संक्षेप में शब्द-ज्ञान) ५. असन्देह (सन्देह-निराकरण)।

**रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्।** (महाभाष्य आ० १)

व्याकरण का प्राचीन रूप निर्वचन आदि के रूप में ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। गोपथ ब्राह्मण (पूर्व० १-२४) में धातु, प्रातिपदिक, आख्यात, लिंग, विभक्ति, वचन, प्रत्यय, स्वर आदि के विषय में प्रश्न पूछा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद प्रातिशाख्यों में व्याकरण के प्रारम्भिक रूप देखने को मिलते हैं। यास्क ने निरुक्त में शब्द की नित्यता, शब्दों की व्युत्पत्ति आदि व्याकरण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

यास्क के पश्चात् आपिशलि, काशकृत्सन, शाकल्य, शाकटायन, इन्द्र आदि वैयाकरणों के नाम आते हैं। इनका उल्लेख पाणिनि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' में किया है, किन्तु पूर्ववर्ती ग्रन्थों में विवेचनाओं का तार्किक एवं व्यवस्थित रूप नहीं था। इस कार्य में व्याकरण को पाणिनि ने एक व्यवस्थित, तर्कसंगत एवं सूत्रात्मक स्वरूप देकर अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की, तथा व्याकरण का एक नया स्वरूप निर्धारित हो गया।

## व्याकरण के प्रमुख आचार्य

### १. आचार्य पाणिनि

संस्कृत-व्याकरण के इतिहास में आचार्य पाणिनि का नाम अमर-ज्योति के समान दैदीप्यमान है। पाणिनि का व्याकरण इतना सर्वांगपूर्ण है कि इसके सामने प्राचीन काल के सारे व्याकरण के ग्रन्थ लुप्तप्राय हो गये हैं। त्रिकाण्डकोश में पुरुषोत्तमदेव ने पाणिनि के छह पर्यायवाचक शब्द दिये हैं-पाणिन, पाणिनि, दाक्षीपुत्र, शालंकि, शालातुरीय और आहिक। पाणिनि की माता का नाम दाक्षी एवं पिता का नाम शलंकु या शलंक था। 'गणरलमहोपधि' ग्रन्थ में कहा गया है-

**'शलातुरो नाम ग्रामः सोऽभिजनो स्यास्तीति शालातुरीयस्तत् भगवान पाणिनिः।'**

इससे स्पष्ट है कि शलातुर ग्राम पाणिनि के पूर्वजों का निवास स्थान था। सम्भवतः जो लाहुर नाम से जाना जाता है।

कुछ पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वान् पाणिनि का समय गौतम बुद्ध के बाद मानते हैं। वाचस्पति गैरोला ने अनेक विद्वानों के मतों का उल्लेख करते हुए इनके जन्म का समय ५०० ई० पूर्व ही माना है।

पाणिनि की प्रमुख रचनायें -१. अष्टाध्यायी २. धातुपाठ ३. गणपाठ ४. उणादिसूत्र ५. लिंगानुशासन ६. पाणिनीय शिक्षा ७. द्विरूपकोष ८. जाम्बवतीविजय या पातालविजय।

### २. कात्यायन

कात्यायन और पाणिनि दोनों समकालीन हैं। कात्यायन ने अष्टाध्यायी के सूत्रों की कमियों को दूर करने के लिए अष्टाध्यायी के १५०० सूत्रों पर ४००० वार्तिक की रचना की। इनका वास्तविक नाम 'वररुचि' है इनके ग्रन्थ का नाम 'स्वर्गारोहण' है।

### ३. महर्षि पतञ्जलि

व्याकरण के इतिहास में पतञ्जलि का नाम अग्रगण्य है। इन्होंने पाणिनि कृत 'अष्टाध्यायी' पर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की जिसे 'पातञ्जलि महाभाष्य' के नाम से जाना जाता है। विषय प्रतिपादन की उत्कृष्ट शैली के कारण महाभाष्य सारे संस्कृत-वाङ्मय में आदर्श ग्रन्थ है। यह केवल व्याकरण का ही ग्रन्थ न होकर एक विश्वकोष है। इनका समय २०० ई० पूर्व तथा पहली ई० शती के मध्य का है।

इनकी प्रमुख रचनायें हैं—व्याकरण-महाभाष्य, पातञ्जलयोगसूत्र (योगदर्शन), सामवेदीय-निदानसूत्र, महानन्द-काव्य, चरक-संहिता का परिष्कार।

**४. भर्तृहरि**

भर्तृहरि पतञ्जलि-कृत व्याकरण-महाभाष्य के प्रमुख व्याख्याकार हैं। भर्तृहरि ने व्याकरण-महाभाष्य पर 'महाभाष्य-दीपिका' टीका लिखी है। 'वाक्यपदीय' के रचयिता भर्तृहरि का नाम वैयाकरणों में उल्लेखनीय है। युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार ४५० ई० पूर्व का है। इन्होंने श्रृंगारशतक, वैराग्यशतक और नीतिशतक का प्रणयन किया है।

**५. भट्टोजि दीक्षित**

भट्टोजि दीक्षित महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता लक्ष्मीधरभट्ट तथा गुरु पं० शेषकृष्ण थे। डॉ० वेलवेलकर ने भट्टोजि दीक्षित का समय ई० सन् १६०० से १६५० के मध्य स्वीकार किया है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'सिद्धान्तकौमुदी' है। इन्होंने 'अष्टाध्यायी' के सभी सूत्रों को विविध प्रकरणों में व्यवस्थित किया है।

इनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं—शब्द-कौस्तुभ (अष्टाध्यायी के सूत्रों पर टीका), सिद्धान्त-कौमुदी, प्रौढमनोरमा (सिद्धान्त-कौमुदी की व्याख्या)।

**६. आचार्य वरदराज**

आचार्य वरदराज भट्टोजि दीक्षित के शिष्य हैं। ये दक्षिणात्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम दुर्गातनय था। इन्होंने सिद्धान्त-कौमुदी को सरल बनाने लिए 'लघुसिद्धान्त-कौमुदी' और 'मध्य सिद्धान्तकौमुदी' की रचना की। इनका समय १७ वीं शताब्दी माना जाता है।

✤

# लघुसिद्धान्तकौमुदी

## समास-प्रकरणम्

### १. केवलसमास

समास शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'अस्' (फेंकना) धातु से बना है और इसका अर्थ है 'संक्षेप'। जब दो या दो से अधिक पदों को इस प्रकार रखा जाय कि उनके आकार में कुछ कमी आ जाय और अर्थ भी बना रहे, तो उसे समास कहते हैं।

**समासः पञ्चधा। तत्र समसनं समासः।**

समास पाँच प्रकार का होता है। 'समसनं' संक्षेप को समास कहते हैं। अनेक पदों का एक पद बना देने का नाम ही समास है। समास शब्द का अर्थ है 'संक्षेप'। अनेक पदों का एक पद बन जाना ही 'संक्षेप' (समास) है।

जब दो या दो से अधिक पदों को जोड़कर समास करते हैं तब अन्तिम पद की विभक्ति को छोड़कर, शेष पदों की विभक्तियों का लोप हो जाता है। जैसे—'सभायाः पतिः'-सभापतिः।

यहाँ 'सभायाः पतिः' का जो अर्थ है वही अर्थ 'सभापतिः' का भी है, किन्तु दोनों को एक साथ कर देने पर 'सभायाः' का विभक्तिसूचक प्रत्यय 'याः' का लोप हो गया और 'सभायाः पतिः' की अपेक्षया 'सभापतिः' छोटा भी हो गया।

**स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः।**

और वह समास विशेष नाम से रहित कैवल समास नामक प्रथम है अर्थात् जिस समास का कोई विशेष नाम नहीं कहा गया है उसे केवल समास कहा जाता है। यह समास का पहला प्रकार है। जैसेः—'**भूतपूर्वः**' (जो पहले हो चुका है) में ९०६ 'सह सुपा' २।१।४।। से समास हुआ है। यह किसी विशेष समास कै अधिकार में नहीं है, अतः यह केवल समास है।

**प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः।**

जिस समास में प्रायः पूर्व पद की प्रधानता होती है उसे 'अव्ययीभाव' समास कहा जाता है। यह समास का दूसरा भेद है।

प्रधानता का निर्णय आगे आने वाले पद के अर्थ के अन्वय के आधार पर किया जाता है। जिस पद के अर्थ का अन्वय आगे आने वाले पद के साथ होगा, वही पद प्रधान माना जायगा। जैसेः—'**अधिहरि**' (हरि में) में पूर्वपद 'अधि' का अर्थ 'में' प्रधान है क्योंकि उसी का अन्य पदार्थों के साथ अन्वय हो रहा है। अतः यह अव्ययीभाव समास है।

परिभाषा में 'प्रायः' पद की सार्थकता 'उन्मत्ता गङ्गा यत्र स उन्मत्तागङ्गो नाम देश' (जहाँ गंगा उन्मत्त है वह उन्मत्तगंग नामक देश है) में पूर्वपद का अर्थ प्रधान न

होकर देश रूप अन्य पद प्रधान है, किन्तु अव्ययीभाव के अधिकार में होने से यह भी अव्ययीभाव समास है। यदि 'प्रायेण' पद न कहा जाय तो यहाँ पर अव्ययीभाव संज्ञा न हो सकेगी।

**प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः।**

जिस समास में प्रायः उत्तरपद प्रधान होता है वह 'तत्पुरुष' समास कहा जाता है। यह समास का तीसरा भेद है।

जैसे—'**राजपुरुषः**' (राजा का पुरुष, सरकारी पुरुष) में उत्तरपद का अर्थ प्रधान है, क्योंकि उसी का अन्वय आगे आने वाले पद के अर्थ के साथ है। अतः यह तत्पुरुष समास का उदाहरण है।

यहाँ 'प्रायेण' पद कहने से जहाँ 'पञ्चानां तंत्राणां समाहारः' (पाँच तंत्रों का समाहार) में समाहार अर्थ में 'तत्पुरुष' समास हुआ है वहाँ तत्पुरुष समास न हो पाता, क्योंकि समाहार अन्य पद का अर्थ है, उत्तरपद का अर्थ नहीं।

**तत्पुरुष भेदः कर्मधारयः।**

तत्पुरुष का ही एक भेद 'कर्मधारय' है। जहाँ विशेष्य तथा विशेषण का समास होता है, वहाँ 'कर्मधारय' समास होता है। इसमें उत्तरपद की प्रधानता होती है अतः यह तत्पुरुष का ही एक प्रकार माना जाता है।

जैसे—'**नीलोत्पलम्**'-नीलं च तत् उत्पलं में 'नील' विशेषण है और 'उत्पल' विशेष्य है। अतः यह कर्मधारय समास का उदाहरण है।

**कर्मधारयभेदो द्विगुः।**

कर्मधारय का ही एक भेद 'द्विगु' है। विशेष्य और विशेषण के समास में यदि विशेषण संख्यावाचक हो तो उसे द्विगु समास कहा जाता है।

जैसे—'**पञ्चगवम्' पञ्चानां गवां समाहारः** (पाँच गायों का समाहार) में विशेषण 'पञ्च' संख्यावाचक है। अतः यह द्विगु समास का उदाहरण है।

**प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः चतुर्थः।**

जिस समास में प्रायः अन्यपद के अर्थ की प्रधानता होती है, वह 'बहुव्रीहि' समास कहलाता है। यह चौथा समास है।

जैसे—'**लम्बकर्णः**' (लम्बे कानों वाला) में 'लम्ब' और 'कर्ण' समास के इन दोनों पदों से किसी भिन्न-पद के अर्थ की प्रधानता का पता चलता है क्योंकि उसी भिन्न अर्थ का अन्यपद के अर्थों के साथ अन्वय होता है। अतः यह बहुव्रीहि समास का उदाहरण है।

यहाँ 'प्रायेण' पद कहने से 'द्वित्राः' (दो या तीन) इत्यादि समासों का भी ग्रहण बहुव्रीहि में हो जाय, नहीं तो उभयपद प्रधान होने के कारण इसको बहुव्रीहि न कहा जा सकेगा।

**प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः।**

जिस समास में प्रायः दोनो पदों के अर्थ की प्रधानता होती है वहाँ 'द्वन्द्व' समास होता है। यह समास का पाँचवा प्रकार है।

जैसे—**'रामलक्ष्मणौ'** (राम और लक्ष्मण) में दोनों पदों के अर्थों की प्रधानता है। अतः यह द्वन्द्व समास का उदाहरण है।

यहाँ 'प्रायेण' पद कहने से **'पाणिपादम्'** (हाथ और पैर) समाहार द्वन्द्व के प्रयोग में द्वन्द्व समास तो है, किन्तु इन दोनों पदों के अर्थ की प्रधानता नहीं है।

इन पाँचों समासों में बहुव्रीहि तथा द्वन्द्व ये दोनों अनेक पदों के साथ भी होते हैं, शेष समास दो-दो पदों के होते हैं।

समास के भेदों के लिए यह द्वयर्थक पद्य स्मरणीय—

**द्वन्द्वोऽस्मि द्विगुरहं गृहे च मे सततमव्ययीभावः।**
**तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः।।**

कोई व्यक्ति किसी मजदूर से नौकरी करने के लिए कह रहा है—हे पुरुष (तत्पुरुष)! मैं द्वन्द्व (हम पति-पत्नी दो हैं) हूँ, मैं द्विगु (मेरे पास दो गाय या बैल हैं) हूँ, मेरे घर में सदा अव्ययीभाव (कम खर्च होता) है, इसलिए तुम कर्मधारय (नौकरी स्वीकार कर लो) जिससे मैं बहुव्रीहि (बहुत धान्य वाला) हो जाऊँ।

**१०४. समर्थः पदविधिः २।१।१।**

**पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः।**

पद के सम्बन्ध में जो विधि होती है वह विधि समर्थ पद के आश्रित ही जाननी चाहिए।

पद को आश्रित कर की गयी विधि ही पदविधि होती है। यह पदविधि कैसे पद को आश्रित या **उद्देश्य कर होती है** ? समर्थ पदों को। अर्थात् जहाँ सामर्थ्य होगा, वहीं पदविधि होती है। सामर्थ्य क्या है ? जिन पदों का समास आदि होता है उन पदों के अर्थों की परस्पर आकांक्षा आदि के कारण सम्बन्ध होता है।

वह सामर्थ्य दो प्रकार का होता है—१. व्यपेक्षा २. एकार्थीभाव।

१. व्यपेक्षा—जहाँ आकांक्षा आदि के कारण पदों में जो परस्पर सम्बन्ध होता है। उसे व्यपेक्षा कहा जाता है।

जैसे—'राज्ञः पुरुषः' में 'राजन्' और 'पुरुष' पदों के अलग-अलग होने पर भी उन पदों में अर्थ की दृष्टि से आकांक्षा के कारण दोनों में परस्पर सम्बन्ध है।

२. एकार्थीभाव—जहाँ भिन्न-भिन्न पदार्थों वाले पदों की जब एक साथ उपस्थिति होती है तो वहाँ एकार्थीभाव रूप सामर्थ्य होता है।

जैसे—'राजपुरुषः' में 'राज्ञः' और 'पुरुषः' का एकार्थीभाव है।

**१०५. प्राक्कडारात् समासः २।१।३।**

**'कडाराः कर्मधारये' इत्यतः प्राक् समास इत्यधिक्रियते।**

'कडारा कर्मधारये' २।२।३८।। इस सूत्र के पहले तक समास का अधिकार है अर्थात् 'कडारा कर्मधारये' सूत्र से लेकर 'वाऽऽहिताग्न्यादिषु' २।३।३७।। तक सभी सूत्र समास का ही विधान करते हैं।

**१०६. सह सुपा २।१।४।।**

**सुप् सुपा सह वा समस्यते। समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक्।**

**सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है।**

सुपा तृतीयान्त पद है और प्रत्यय होने के कारण 'प्रत्यये ग्रहणे तदन्तग्रहणम्' इस परिभाषा के आधार पर 'सुप्' से सुबन्त का ग्रहण होता है। सुबन्त—सु औ जस् आदि २१ प्रत्यय जिसके अन्त में हों।

समास होने के कारण प्रातिपदिक संज्ञा तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २।४।७१।। सूत्र से 'सुप्' का लोप होता है। जैसे—'राज्ञः' सुबन्त का 'पुरुषः' सुबन्त के समास साथ होने पर ही 'राजपुरुषः' बनता है।

**वृत्तिः-परार्थाभिधानं वृत्तिः।**

परार्थ के बोधन कराने को 'वृत्ति' कहते हैं। समास में जब अनेक पदों को एक साथ करते हैं या धातु या संज्ञा में कोई प्रत्यय जोड़ते हैं तो एक विशिष्ट अर्थ की प्रतीति हुआ करती है उसे ही परार्थ कहते हैं। वृत्ति से ऐसे ही परार्थ का बोध हुआ करता है।

**कृत्तद्धितसमासैकशेष-सनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्चवृत्तयः।**

कृत्, तद्धित्त, समास, एकशेष और सनाद्यन्त धातु रूप—ये पाँच वृत्तियाँ होती हैं।

**विग्रह—वृत्यार्थाऽवबोधकं वाक्यं विग्रहः।**

वृत्ति के अर्थ का ज्ञान कराने वाला वाक्य विग्रह कहलाता है। जैसे—'राजपुरुषः' यह समासवृत्ति है इसके अर्थ का ज्ञान 'राज्ञः पुरुषः' इस वाक्य से होता है। अतः यह विग्रह है।

**स च लौकिकोऽलौकिक चेति द्विधा। तत्र 'पूर्व भूतः' इति लौकिक। 'पूर्व अम् भूत सु' इत्यलौकिकः। भूतपूर्वः। 'भूतपूर्वे चरड्' इति निर्देशात् पूर्वनिपातः।** और वह विग्रह—लौकिक और अलौकिक के भेद से दो प्रकार होता है।

१. लौकिक—जिसका लोक में प्रयोग होता है। जैसे—'भूतपूर्वः' का पूर्व भूतः।

२. अलौकिक—जिसका लोक में प्रयोग नहीं होता है। जैसे—पूर्वं भूतः का पूर्व अम् भूत सु ।

**भूतपूर्वः** (जो पहले हुआ)

'पूर्वं भूतः' लौकिक विग्रह, 'पूर्व अम् भूत सु' लौकिक विग्रह में 'सह सुपा' सूत्र से 'पूर्व अम्' का 'भूत सु' के साथ केवल समास हुआ। 'भूतपूर्वे चरड्' से 'भूत' का पूर्व प्रयोग-भूत सु पूर्व अम्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'अम्' और 'सु' का लोप-भूतपूर्व। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'भूतपूर्व' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लाने पर-भूतपूर्व सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से सु के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-भूतपूर्व स्। 'ससजुषो रुः' से स् को 'रु', के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-भूतपूर्वर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग आदेश होकर 'भूतपूर्वः' सिद्ध हुआ।

**(वार्तिक) इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च। वागर्थौ इव—वागर्थाविव**

'इव' इस अव्यय पद के साथ सुबन्त पद का समास होता है और विभक्ति का लोप नहीं होता है।

**वागर्थाविव** (वाणी और अर्थ के समान)

'वागर्थौ इव' लौकिक विग्रह, 'वागर्थ औ इव' अलौकिक विग्रह में 'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च' वार्तिक से 'वागर्थ औ' का 'इव' के साथ विकल्प से केवलसमास हुआ–वागर्थ औ इव। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिक' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा।'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'औ' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च' वार्तिक से लोप का निषेध। 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि एकादेश हुआ–वागर्थौ इव। पुनः 'एचोऽयवायावः' से 'औ' को 'आव्' आदेश होकर 'वागर्थाविव' सिद्ध हुआ।

इति केवलसमास

## २. अव्ययीभावसमास

**१०७. अव्ययीभावः २।१।५।।**

**अधिकारोऽयं प्राक् तत्पु॰ षात्।**

यह अधिकार सूत्र है। 'तत्पुरुषः' २।१।२२।। के पूर्व तक अव्ययीभाव का अधिकार है। अर्थात् तत्पुरुष के पूर्व सूत्र 'अन्ये पदार्थे च संज्ञायाम्' २।१।२१।। तक अव्ययीभव का अधिकार समझना चाहिए।

**१०८. अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासंप्रति- शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-संम्पत्ति- साकल्यान्तवचनेषु २।१।६।।**

**विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते।**

१. विभक्ति २.समीप ३. समृद्धि ४. समृद्धि का नाश ५. अभाव ६. नाश ७. असंप्रति–अनुचित ८.शब्द की अभिव्यक्ति ९. पश्चात् १०. यथा ११. क्रमशः १२. एक साथ १३. समानता १४. सम्पत्ति १५. सम्पूर्णता १६. अन्त। इन सोलह अर्थों में वर्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ नित्य समास होता है और उस समास को अव्ययीभाव कहते हैं।

**प्रायेणाऽविग्रहो नित्यसमासः प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ 'हरि ङि अधि' इति स्थिते—**

प्रायः जिस समास का विग्रह नहीं होता है उसे नित्य समास कहते हैं अथवा प्रायः जिस समास का अपने पदों द्वारा विग्रह नहीं होता है अर्थात् जिन शब्दों का समास हुआ हो उन शब्दों द्वारा विग्रह न होकर किसी भिन्न शब्द को लेकर विग्रह होता हो।

यहाँ विग्रह से अभिप्राय लौकिक विग्रह से है, क्योंकि अलौकिक विग्रह तो सभी समासों का होता ही है।

नोट—अव्ययीभाव समास में प्रायः दो पद होते हैं—इनमें से प्रथम पद प्रायः अव्यय होता है तथा दूसरा कोई संज्ञा। समास करने पर बना हुआ पद भी अव्यय ही होता है और अव्ययीभाव शब्द के रूप नहीं चलते हैं। वह सदैव नपुसंकलिंग प्रथमा एकवचन में रहता है। अतः इसका नाम अव्ययीभाव है।

विभक्ति के अर्थ में—'अधिहरि' (हरि में) 'हरौ' लौकिक विग्रह, 'हरि ङि अधि' अलौकिक विग्रह में यहाँ 'अधि' अव्यय है और वह सप्तमी विभक्ति के अर्थ में है अतः 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से 'हरि ङि' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ।

अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि समास के दो पदों में से किसे पहले रखा जाय और किसे बाद में। इसके समाधान के लिए अगला सूत्र है—

**१०९. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १।२।४३।।**

**समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनं स्यात्।**

समासशास्त्र में प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट पद की उपसर्जन संज्ञा होती है।

समासशास्त्र से तात्पर्य है समासविधायक सूत्रों में। जिन पदों में प्रथमा विभक्ति लगाकर निर्देश किया जाता है उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है।

जैसे—समास का विधान करने वाला सूत्र 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' में 'अव्ययम्' पद प्रथमान्त है अर्थात् प्रथमा विभक्ति द्वारा निर्देशित है। अतः 'अव्यय' पद की उपसर्जन संज्ञा होगी। 'हरि ङि अधि' में अव्यय पद 'अधि' की उपसर्जन संज्ञा होगी।

**११०. उपसर्जनं पूर्वम् २।२।३०।।**

**समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम्। इत्यधेः प्राक्प्रयोगः। सुपोलुक्, एकदेश-विकृतस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः, अव्ययीभावः च' इत्यव्ययत्वात् सुपोलुक्—अधिहरि।**

समास में जिसकी उपसर्जन संज्ञा होती है उसका पहले प्रयोग होता है।

इसलिए प्रकृत सूत्र से 'हरि ङि अधि' में उपसर्जन संज्ञक 'अधि' का पहले प्रयोग होकर—'अधि हरि ङि' बना।

तब 'अधि हरि ङि' की 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धित-समासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। सुपोधातुप्रातिपदिकयोः से सुप् 'ङि' का लोप-अधिहरि। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से पुनः 'अधिहरि' को प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लाने पर-अधिहरि सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् का लोप होकर **अधिहरि** सिद्ध हुआ।

**१११. अव्ययीभावश्च २।४।१८।।**

**अयं नपुसंकं स्यात्। गाः पातीति गोपास्तस्मिन्निति अधिगोपम्।**

अव्ययीभाव समास नपुसंकलिंग में होता है।

**अधिगोपम्** (गोप में)

'गोपि' लौकिक विग्रह, 'गोपा ङि अधि' अलौकिक विग्रह में' अव्ययं विभक्ति-समीपसमृद्धि० 'सूत्र से अव्यय 'अधि' का 'गोपा ङि' सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'अधि' की उपसर्जन संज्ञा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'अधि' का पूर्व प्रयोग-अधि गोपा ङि। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा।

'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङि' का लोप-अधिगोपा। 'अव्ययीभावश्च' से नपुसंकलिंग हुआ। 'ह्रस्वोनपुसंकै प्रातिपदिकस्य' से अधिगोपा के अन्तिम स्वर को ह्रस्व आदेश-अधिगोप। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से पुनः 'अधिहरि' को प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-अधिगोप सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् का लोप प्राप्त हुआ किन्तु अगला सूत्र लोप का निषेध करता है—

**९१२. नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः २।४।८३।।**

**अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक्, तस्य पञ्चमीं विना अम् आदेशः स्यात्।**

अकारान्त अव्ययीभाव के पश्चात् 'सुप्' का लोप नहीं होता है, किन्तु पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर अन्य विभक्तियों के उस 'सुप्' के स्थान पर 'अम्' आदेश हो जाता है।

जैसे—'अधिगोप सु' में अधिगोप अदन्त अकारान्त है। अतः 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से सु के स्थान पर 'अम्' आदेश 'अमिपूर्वः' से पर्वरूप एकादेश होकर **अधिगोपम्** सिद्ध हुआ।

**९१३. तृतीया-सप्तम्योर्बहुलम् २।४।८४।।**

**अदन्तादव्ययीभावात् तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्भावः स्यात्।**

अकारान्त अव्ययीभाव के पश्चात् तृतीया तथा सप्तमी विभक्तिप्रत्ययों के स्थान पर बहुलता (विकल्प) से 'अम्' आदेश होता है।

विकल्प से अम् आदेश का तात्पर्य-तृतीया और सप्तमी के विभक्ति प्रत्ययों टा, ङि के स्थान पर कभी 'अम्' आदेश हो भी सकता है और कभी नहीं भी हो सकता है।

जैसे—अधिगोप का 'अधिगोपम्' तथा तृतीया में 'अधिगोपेन' और सप्तमी में 'अधिगोपे' भी विकल्प से बन सकता है।

अव्ययपद का निम्नलिखित सुबन्तों के साथ समास होता है जो इस प्रकार हैं—

**उपकृष्णम्, उपकृष्णेन। मद्राणां समृद्धिः-सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धिः-दुर्यवनम्। मक्षिकाणाम् अभावः-निर्मक्षिकम्। हिमस्यात्ययः-अतिहिमम। निद्रा संप्रति न युज्यते इति अतिनिद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाशः-इतिहरि। विष्णोः पश्चाद्-अनुविष्णु। योग्यता-विप्सा-पदार्थानतिवृत्ति-सादृश्यानि यथार्थाः। रूपस्य योग्यम् अनुरूपम्। अर्थमर्थ प्रत्यर्थम्। शक्तिमनतिक्रम्य-यथा शक्ति।**

**उपकृष्णम्** (कृष्ण के पास)

'कृष्णस्य समीपम्' लौकिक विग्रह, 'कृष्ण ङस् उप' अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से अव्यय 'उप' का 'कृष्ण ङस्' सुबन्त के साथ अव्ययीभाव समास हुआ, यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'उप' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'उप' का पूर्व प्रयोग-उप कृष्ण ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् ङस् का लोप-उपकृष्ण। 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से 'उपकृष्ण' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर

प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-उपकृष्ण सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् सु का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वम्पञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-उपकृष्ण अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'उपकृष्णम्' सिद्ध हुआ।

**विकल्प से तृतीया और सप्तमी में—उपकृष्णेन तथा उपकृष्णे की सिद्धि।**

समास आदि विधि होकर उपकृष्ण बन जाने पर—

एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से पुनः प्रातिपदिक संज्ञा मानकर विकल्प से तृतीया विभक्ति की विवक्षा में अकारान्त उपकृष्ण के बाद टा प्रत्यय आया-उपकृष्ण टा। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'टा' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु सूत्र क्रम में 'तृतीया सप्तम्योर्बहुलम्' सूत्र से लोप का निषेध होकर 'टा' को बहुल विकल्प से 'अम्' आदेश इस स्थिति में दीर्घ और उसका बाधकर 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप होकर उपकृष्णम् सिद्ध होता है, किन्तु विकल्प पक्ष में 'टा' को 'अम्' न होकर 'टाङसिङसामिनात्स्याः' से 'टा' को 'इन' आदेश-उपकृष्ण इन। 'आदगुणः' से अ + इ = ए गुण एकादेश होकर 'उपकृष्णेन' सिद्ध हुआ। इसी प्रकार सप्तमी में 'उपकृष्णे' रूप बनेगा

**सुमद्रम्** (मद्र देश की समृद्धि)

'मद्राणां समृद्धिः' लौकिक विग्रह, 'मद्र आम् सु' अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से समृद्धि अर्थ में अव्यय 'सु' का सुबन्त पद 'मद्र आम्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ, यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'सु 'की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'सु' का पूर्व प्रयोग-सु मद्र आम्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'आम्' का लोप-सुमद्र। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'सुमद्र' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय-सुमद्र सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् सु का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-सुमुद्र अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'सुमद्रम्' सिद्ध हुआ।

**दुर्यवनम्** (यवनों का नाश)

'यवनानां व्यृद्धिः' लौकिक विग्रह, 'यवन आम् दुर्' अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि' सूत्र से व्यृद्धि अर्थ में अव्यय 'दुर्' का सुबन्त पद 'यवन आम्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ, यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'दुर्' की उपसर्जन संज्ञा-सुमुद्र अम्। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय दुर् का पूर्व प्रयोग-दुर् यवन आम्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा-दुर् यवन आम्। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'आम्' का लोप-दुर्यवन। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'दुर्यवन' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-दुर्यवन सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु

'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्या:' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-दुर्यवन अम्। 'अमिपूर्व:' से पूर्वरूप एकादेश होकर दुर्यवनम् सिद्ध हुआ।

**निर्मक्षिकम्** (मक्खियों का अभाव)

'मक्षिकाणां अभाव:' लौकिक विग्रह , 'मक्षिका आम् निर्' अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि' सूत्र से अभाव अर्थ में अव्यय 'निर्' का सुबन्त पद 'मक्षिका आम्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'निर्' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'निर्' का पूर्व प्रयोग-निर् मक्षिका आम्। 'अर्थवदधातुरप्रत्यय: प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धित्तसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से सुप् आम् का लोप-निर्मक्षिका। 'अव्ययीभावश्च' से नपुंसकलिंग तथा 'ह्रस्वोनपुंसकै प्रातिपदिकस्य' से निर्मक्षिका कै अन्तिम स्वर आ को ह्रस्व आदेश-निर्मक्षिक। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'निर्मक्षिक' को पुन: प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-निर्मक्षिक सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुप:' से सुप् सु का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्या:' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-निर्मक्षिक अम्। 'अमिपूर्व:' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'निर्मक्षिकम्' सिद्ध हुआ।

**अतिहिमम्** (हिम का नाश)

'हिमस्य अत्यय:' लौकिक विग्रह, 'हिम ङस् अति' अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि' सूत्र से नाश अर्थ में अव्यय 'अति' का सुबन्त पद 'हिम ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'अति' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'अति' का पूर्व प्रयोग-अति हिम ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्यय: प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धित्तसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से सुप् 'ङस्' का लोप-अतिहिम। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'अतिहिम' को पुन: प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय-अतिहिम सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुप:' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्या:' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-अतिहिम अम्। 'अमिपूर्व:' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'अतिहिमम्' सिद्ध हुआ।

**अतिनिद्रम्** (निद्रा इस समय उचित नहीं है)

'निद्रा संप्रति न युज्यते'-लौकिक विग्रह, 'निद्रा सु अति'-अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि' सूत्र से अनुचित अर्थ में अव्यय 'अति' का सुबन्त पद 'निद्रा सु' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'अति' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'अति' का पूर्व प्रयोग-अति निद्रा सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्यय: प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धिसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से सुप् सु का लोप-अतिनिद्रा। 'अव्ययीभावश्च' से नपुसंकलिंग हुआ तथा 'ह्रस्वोनपुसंकै प्रातिपदिकस्य' से निद्रा के अन्तिम आ को ह्रस्व-अतिनिद्र। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'अतिनिद्र' को पुन: प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-अतिनिद्र सु।

'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश–अतिनिद्र अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'अतिनिद्रम्' सिद्ध हुआ।

**इतिहरि** (हरि शब्द का प्रकाश)

'हरि शब्दस्य प्रकाशः' लौकिक विग्रह, 'हरि ङस् इति' अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से शब्दप्रादुर्भाव अर्थ में अव्यय 'इति' का सुबन्त पद 'हरि ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'इति' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'इति' का पूर्व प्रयोग–इति हरि ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङस्' का लोप–इतिहरि। 'अव्ययीभावश्च' से नपुसंकलिंग हुआ। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'इतिहरि' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय–इतिहरि सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् का लोप प्राप्त होकर 'इतिहरि' सिद्ध हुआ।

**अनुविष्णु** (विष्णु के पश्चात्)

'विष्णोः पश्चाद्' लौकिक विग्रह , विष्णु ङस् अनु अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से पश्चात् अर्थ में अव्यय 'अनु' का सुबन्त पद 'विष्णु ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'अनु' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'अनु' का पूर्व प्रयोग–अनु विष्णु ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धित-समासाश्च' प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङस्' का लोप–अनुविष्णु। 'अव्ययीभावश्च' से नपुसंकलिंग हुआ। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'अनुविष्णु' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय–अनुविष्णु सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त होकर 'अनुविष्णु' सिद्ध हुआ।

'यथा' अव्यय शब्द के साथ अव्ययीभाव समास के चार अर्थ इस प्रकार हैं–

१. योग्यता २. वीप्सा ३. पदार्थानतिवृत्ति अर्थात् किसी पदार्थ का अतिक्रमण न करना ४. सादृश्य अर्थात् समान इन चारों कै क्रमशः उदाहरण इस प्रकार हैं।

**अनुरूपम्** (रूप के योग्य)

'रूपस्य योग्यम्'–लौकिक विग्रह, 'रूप ङस् अनु'–अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से यथा के योग्यता अर्थ में अव्यय 'अनु' का सुबन्त पद 'रूप ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'अनु' की उपसर्जन संज्ञा, 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'अनु' का पूर्व प्रयोग–अनु रूप ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा।'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङस्' का लोप–अनुरूप। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'अनुरूप' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय–अनुरूप सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा

तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-अनुरूप अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'अनुरूपम्' सिद्ध हुआ।

**प्रत्यर्थम्** (प्रत्येक अर्थ में)

'अर्थम् अर्थ प्रति'-लौकिक विग्रह, 'अर्थ अम् प्रति' अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि' सूत्र से यथा के विप्सा अर्थ में अव्यय 'प्रति' का सुबन्त पद 'अर्थ अम्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'प्रति' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'प्रति' का पूर्व प्रयोग-प्रति अर्थ अम्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'अम्' का लोप-प्रत्यर्थ। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'प्रत्यर्थ' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-प्रत्यर्थ सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त था किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-प्रत्यर्थ अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'प्रत्यर्थम्' सिद्ध हुआ।

**यथाशक्ति** (शक्ति का अतिक्रमण न करते हुए, शक्ति के अनुसार)

'शक्तिम् अनतिक्रम्य'-लौकिक विग्रह, 'शक्ति अम्यथा'-अलौकिक विग्रह में

'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि' सूत्र से यथा के अतिक्रमण न करना अर्थ में अव्यय 'यथा' का सुबन्त पद 'शक्ति अम्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'यथा' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'यथा' का पूर्व प्रयोग-यथा शक्ति अम्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'अम्' का लोप-यथाशक्ति। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से यथाशक्ति को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-यथा शक्ति सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ। 'अव्ययीभावश्च' से नपुंसकलिंग में 'यथाशक्ति' सिद्ध हुआ।

**९१४. अव्ययीभावे चाऽकाले ६।३।८१।।**

**सहस्य सः स्याद् अव्ययीभावे न तु काले। हरेः सादृश्यम् सहरि। ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण इति अनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपत् सचक्रम्। सदृशः सख्या ससखि। क्षत्राणां संपत्तिः सक्षत्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि।**

अव्ययीभाव समास में सह को स आदेश होता है यदि उत्तरपद कालवाचक शब्द न हो तो। जैसे—'सहहरि' में उत्तरपद 'हरि' कालवाचक शब्द नहीं है इसलिए प्रकृत सूत्र से 'सह' के स्थान पर 'स' आदेश होकर 'सहरि' रूप बनता है।

**सहरि** (हरि के समान)

'हरेः' सादृश्यम्-लौकिक विग्रह, 'हरि ङस् सह'-अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से यथा के सादृश्य अर्थ में अव्यय 'सह' का सुबन्त पद 'हरि ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः

'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'सह' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'सह' का पूर्व प्रयोग-सह हरि ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङस्' का लोप-सहहरि। 'अव्ययीभावे चाऽकाले' से 'सह' को 'स' आदेश-सहरि। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'सहरि' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-सहरि सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप होकर 'सहरि' सिद्ध हुआ।

**अनुज्येष्ठम्** (ज्येष्ठ के क्रम से)

'ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण'-लौकिक विग्रह, 'ज्येष्ठ ङस् अनु'-अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से क्रमशः अर्थ में अव्यय 'अनु' का सुबन्त पद 'ज्येष्ठ ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'अनु' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'अनु' का पूर्व प्रयोग-अनु ज्येष्ठ ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धित- समासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् ङस् का लोप-अनुज्येष्ठ। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'अनुज्येष्ठ' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-अनुज्येष्ठ सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर अम् आदेश-अनुज्येष्ठ अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'अनुज्येष्ठम्' सिद्ध हुआ।

**सचक्रम्** (चक्र के साथ साथ)

'चक्रेण युगपत्'-लौकिक विग्रह, 'चक्र टा सह'-अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से युगपत् (एक साथ) अर्थ में अव्यय 'सह' का सुबन्त पद 'चक्र टा' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ अव्यय पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'सह' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'सह' का पूर्व प्रयोग-सह चक्र टा। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'टा' का लोप-सहचक्र। 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से 'सह' को 'स' आदेश-सचक्र। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'सचक्र' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-सचक्र सु 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त था किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-सचक्र अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'सचक्रम्' सिद्ध हुआ।

**ससखि** (मित्र के समान)

'सदृशः सख्या'-लौकिक विग्रह, 'सखि टा सह'-अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से समान अर्थ में अव्यय 'सह' का सुबन्त पद 'सखि टा' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ अव्यय पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'सह' की उपसर्जन संज्ञा, 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'सह' का

पूर्व प्रयोग-सह सखि टा। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'टा' का लोप-सहसखि। 'अव्ययीभावे चाऽकाले' से 'सह' को 'स' आदेश-ससखि। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'ससखि' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-ससखि। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप होकर 'ससखि' सिद्ध हुआ।

**सक्षत्रम्** (क्षत्रियों की संपत्ति)

'क्षत्राणां सम्पत्तिः'-लौकिक विग्रह, 'क्षत्र आम् सह'-अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से सम्पत्ति अर्थ में अव्यय 'सह' का सुबन्त पद 'क्षत्र आम्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'सह' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'सह' का पूर्व प्रयोग-सह क्षत्र आम्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धित-समासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'आम्' का लोप-सहक्षत्र। 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से 'सह' को 'स' आदेश-सक्षत्र। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'सक्षत्र' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-सक्षत्र सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-सक्षत्र अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'सक्षत्रम्' सिद्ध हुआ।

**सतृणम्** (तिनके को भी न छोड़कर अर्थात् सबको)

'तृणम् अपि अपरित्यज्य'-लौकिक विग्रह, 'तृण अम् सह'-अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से साकल्य अर्थ में अव्यय 'सह' का सुबन्त पद 'तृण अम्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'सह' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'सह' का पूर्व प्रयोग-सह तृण अम्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'टा' का लोप-सहतृण। 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से 'सह' को 'स' आदेश-सतृण। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'सतृण' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-सतृण सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-सतृण अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'सतृणम्' सिद्ध हुआ।

**साग्नि** (अग्निचयन के अन्त तक)

'अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते'-लौकिक विग्रह, 'अग्नि टा सह'-अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से 'अन्त' अर्थ में अव्यय 'सह' का सुबन्त पद 'अग्नि टा' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ अव्यय पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'सह' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्'

से अव्यय 'सह' का पूर्व प्रयोग-सह अग्नि टा। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'टा' का लोप-सह अग्नि। 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से 'सह' को 'स' आदेश-साग्नि। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'साग्नि' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-साग्नि सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप होकर 'साग्नि' सिद्ध हुआ।

**९१५. नदीभिश्च २।१।२०।।**

**नदीभिः सह संख्या समस्यते।**

**(वार्तिक) समाहारे चायमिश्यते। पञ्चगङ्गम्। द्वियमुनम्।**

नदीवाचक शब्दों के साथ संख्यावाचक शब्दों का समास होता है और वह अव्ययीभाव समास होता है। यह समास समाहार (समूह) अर्थ में होता है।

**पञ्चगङ्गम्** (पाँच गंगाओं का समूह)

पञ्चानां गङ्गानां समाहार — लौकिक विग्रह

पञ्चन् आम् गंगा आम् — अलौकिक विग्रह में

'नदीभिश्च' सूत्र से संख्यावाचक 'पञ्चन आम्' का सुबन्त पद 'गङ्गा आम्' के साथ 'समाहारे चायमिश्यते' वार्तिक से समाहार अर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'आम्' का लोप-पञ्चन्गङ्गा। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से पञ्चन् के 'न्' का लोप-पञ्चगङ्गा। 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' से 'गङ्गा' की उपसर्जन संज्ञा। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से गङ्गा के आ को ह्रस्व अ आदेश-पञ्चगङ्ग। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'पञ्चगङ्ग' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-पञ्चगङ्ग सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-पञ्चगङ्ग अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'पञ्चगङ्गम्' सिद्ध हुआ।

द्वियमुनम् (दो यमुना का समूह)

द्वयोः यमुनयोः समाहारः — लौकिक विग्रह

द्विओस् यमुना ओस् — अलौकिक विग्रह

शेष समास आदि कार्य 'पञ्चगङ्गम्' की तरह होगा।

**९१६. तद्धिताः ४।१।७६।।**

**आपञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम्।**

पञ्चम् अध्याय की समाप्ति तक 'तद्धिताः' सूत्र का अधिकार है अर्थात् इस सूत्र से लेकर अष्टाध्यायी कै पाँचवें अध्याय के अन्तिम सूत्र 'निष्प्रवाणिश्च' (५।४।१६०।) तक जिन प्रत्ययों का विधान है। उन्हें 'तद्धित' प्रत्यय कहा जाता है।

**९१७. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ५।४।१०७।।**

**शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तोऽव्ययीभावे। शरदःसमीपम्-उपशरदम् प्रतिविपाशम्।**

अव्ययीभाव समास में शरद् आदि शब्दों से समासान्त (समास के अन्त में) टच् प्रत्यय होता है। टच् के ट् और च् की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर कैवल अ शेष बचता है।

**उपशरदम्** (शरद् के समीप)

'शरदः समीपम्'-लौकिक विग्रह, 'शरद् ङस् उप'-अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से समीप अर्थ में अव्यय 'उप' का सुबन्त पद 'शरद् ङस' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'उप' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'उप' का पूर्व प्रयोग-उप शरद् ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङस्' का लोप-उपशरद्। 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः' से 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के टकार और चकार अनुबन्ध लोप केवल 'अ' शेष-उपशरद् अ। उपशरद को पुन प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-उपशरद सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-उपशरद अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'उपशरदम्' सिद्ध हुआ।

**प्रतिविपाशम्** (विपाशा नदी की ओर)

'विपाशायाः अभिमुखम्'-लौकिक विग्रह, 'विपाशा अम् प्रति'-अलौकिक विग्रह में 'लक्षणेनाभिप्रती अभिमुख्ये'(जो अव्ययीभावसमास प्रकरण में नहीं आया है बल्कि सिद्धान्तकौमुदी के समास प्रकरण में है) सूत्र से अभिमुख (ओर) अर्थ में अव्यय 'प्रति' का सुबन्त पद 'विपाश् अम्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम' से अव्यय 'प्रति' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'प्रति' का पूर्व प्रयोग-प्रति विपाश् अम्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'अम्' का लोप-प्रतिविपाश्। 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः' से 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के टकार और चकार अनुबन्ध लोप केवल 'अ' शेष-प्रतिविपाश् अ। 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से 'प्रतिविपाश' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-प्रतिविपाश सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-प्रतिविपाश अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'प्रतिविपाशम्' सिद्ध हुआ।

**गणसूत्र—जराया जरश्च। उपजरसमित्यादि।**

अव्ययीभाव समास में समासान्त को 'टच्' होता है और 'जरा' को 'जरस्' आदेश होता है।

**उपजरसम्** (वृद्धावस्था के समीप)

'जरायाः समीपम्'–लौकिक विग्रह, 'जरा ङस् उप'–अलौकिक विग्रह में 'अव्यय विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से समीप अर्थ में अव्यय 'उप' का सुबन्त पद 'जरा ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'उप' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'उप' का पूर्व प्रयोग–उप जरा ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धित- समासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङस्' का लोप–उपजरा। 'जराया जरश्च गणसूत्र से 'जरा' को 'जरस्' आदेश तथा समासान्त को 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के टकार और चकार अनुबन्ध लोप केवल 'अ' शेष–उपजरस् अ । 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से 'उपजरस' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय–उपजरस सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश–उपजरस अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'उपजरसम्' सिद्ध हुआ।

**९१८. अनश्च। ५।४।१०८।।**

**अन्नन्तादव्ययीभावात् टच् स्यात्।**

अन्नन्त अर्थात् जिसके अन्त में 'अन्' हो, ऐसे अव्ययीभाव से समासान्त (समास के अन्त में) 'टच्' प्रत्यय होता है। 'टच्' का 'अ' शेष रहता है।

**उपराजम्** (राजा के समीप)

'राज्ञः समीपम्'–लौकिक विग्रह, 'राजन् ङस् उप'–अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से समीप अर्थ में अव्यय 'उप' का सुबन्त पद 'राजन् ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'उप' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'उप' का पूर्व प्रयोग–उप राजन् ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धित- समासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् ङस् का लोप–उपराजन्। 'अनश्च' सूत्र से 'टच्' प्रत्यय, टच् के टकार और चकार अनुबन्ध लोप केवल 'अ' शेष–उपराजन् अ–उपराजन। इस स्थिति में–

**९१९. नस्तद्धिते। ६।४।१४४।।**

**नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते। उपराजम्। अध्यात्मम्।**

नकारान्त भसंज्ञक अंग से परे तद्धित प्रत्यय होने पर भसंज्ञक 'टि' का लोप हो जाता है।

'यचिभम्' से उपराजन् की भसंज्ञा। 'नस्तद्धिते' से भसंज्ञक अंग से परे 'टच्' (अ) होने पर 'टि' 'अन्' का लोप–उपराज। 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से 'उपराज' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय–उपराज सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त था किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश–उपराज अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'उपराजम्' सिद्ध हुआ।

**अध्यात्मम्** (आत्मा में)

'आत्मनि अधि'-लौकिक विग्रह, 'आत्मन् ङि अधि'-अलौकिक विग्रह

शेष समास आदि कार्य 'उपराजम्' की तरह होगा।

**९२०. नपुंसकादन्यतरस्याम् ५।४।१०९।।**

**अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावात् टच् वा स्यात्। उपचर्मम्, उपचर्म।**

जिसके अन्त में 'अन्' हो और जो नपुंसकलिंग शब्द हो तो उस अव्ययीभाव से विकल्प से 'टच्' (अ) प्रत्यय होता है।

**उपचर्मम्** (चर्म के पास)

'चर्मणः समीपम्'-लौकिक विग्रह, 'चर्मन् ङस् उप'-अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से समीप अर्थ में अव्यय 'उप' का सुबन्त पद 'चर्मन् ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'उप' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'उप' का पूर्व प्रयोग-उप चर्मन् ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धित-समासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङस्' का लोप-उपचर्मन्। 'नपुंसकादन्यतरस्याम्' से नपुंसकलिंग 'चर्मन्' को विकल्प से 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के टकार और चकार अनुबन्ध लोप केवल 'अ' शेष-उपचर्मन् अ। 'यचिभम्' से भसंज्ञा तथा 'नस्तद्धिते' से भसंज्ञक टि 'अन्' का लोप-उपचर्म् अ-उपचर्म। 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से 'उपचर्म' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-उपचर्म सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त था किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश-उपचर्म अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'उपचर्मम्' सिद्ध हुआ।

**विकल्प से टच् प्रत्यय न करने पर—**

उपचर्मन् रूप बन जाने पर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-उपचर्मन् सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सु का लोप-उपचर्मन्। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से 'न्' का लोप होकर 'उपचर्म' सिद्ध होता है।

**९२१. झयः ५।४।१११।।**

**झयन्तादव्ययीभावात् टच् वा स्यात्। उपसमिधम्, उपसमित्।**

अव्ययीभाव समास के अन्त में यदि 'झय्' प्रत्याहार (वर्गों का पहला, दूसरा, तीसरा और चौथा) का वर्ण हो तो उससे विकल्प से 'टच्' प्रत्यय होता है।

**उपसमिधम्** (समिधा के समीप)

'समिधः समीपम्'-लौकिक विग्रह, 'समिध् ङस् उप'-अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०' सूत्र से समीप अर्थ में अव्यय 'उप' का सुबन्त पद 'समिध् ङस्' के साथ अव्ययीभाव समास हुआ, यहाँ 'अव्यय' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अव्यय 'उप' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से अव्यय 'उप' का पूर्व प्रयोग-उप समिध् ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्'

तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङस्' का लोप-उपसमिध्। 'झयः' से समाससन्त को 'टच् प्रत्यय, टच्' के टकार और चकार अनुबन्ध लोप केवल 'अ' शेष-उपसमिध् अ। 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से 'उपसमिध' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय-उपसमिध सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप प्राप्त था किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा 'सु' के स्थान पर 'अम्' आदेश उपसमिध अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'उपसमिधम्' सिद्ध हुआ।

यहाँ 'झयः' सूत्र से 'टच्' प्रत्यय विकल्प से हुआ है यदि 'टच्' प्रत्यय न करे तो-उपसमिध् बन जाने पर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-उपसमिध् सु। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा तथा 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् 'सु' का लोप-उपसमिध्। 'झलां जशोऽन्त' से 'ध्' को 'द्' आदेश-उपसमिद्। 'वाऽवसाने' सूत्र से 'द्' को 'त्' आदेश होकर 'उपसमित्' सिद्ध हुआ।

इति अव्ययीभावसमास

## ३. तत्पुरुष समास

**९२२. तत्पुरुषः २।१।२२।।**

**अधिकारोऽयं प्राग् बहुव्रीहेः।**

यह अधिकार सूत्र है 'शेषो बहुव्रीहिः' २।२।२३।। सूत्र के पहले तक इस सूत्र का अधिकार है।

यह पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि 'प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः तृतीयः' अर्थात् जिस समास में प्रायः उत्तरपद की प्रधानता हो, उसे तत्पुरुष कहते हैं यह समास का तीसरा भेद है। इस समास में प्रथम पद दूसरे पद का विशेषण बनता है अर्थात् प्रथम पद विशेषण तथा दूसरा पद विशेष (विशेष्य) और समासान्त पद का लिंग और वचन अन्तिम पद के अनुसार होता है। जैसे-'राज्ञः पुरुषः' में 'राज्ञः' एक प्रकार से 'पुरुषः' पद का विशेषण है।

तत्पुरुष शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं-१. तस्य पुरुषः २. सः पुरुषः। इन्हीं दो अर्थों के अनुसार तत्पुरुष के मुख्य दो भेद हैं-

**१. व्यधिकरण**-जिस समास में प्रथम पद और द्वितीय पद अलग-अलग विभक्तियों के हों। जैसे-'राज्ञः पुरुषः' में 'राज्ञः' पद षष्ठी विभक्ति एकवचन का है जबकि 'पुरुषः' पद प्रथमा विभक्ति एकवचन का है। यह द्वितीय विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति तक ६ प्रकार का होता है।

**२. समानाधिकरण**-जिस समास में प्रथम पद और द्वितीय पद समान विभक्ति के हों और प्रथम पद दूसरे पद का विशेषण हो उसे समानाधिकरण या कर्मधारय समास कहते हैं। जैसे-'कृष्णः सर्पः' में 'कृष्णः' पद और 'सर्पः' पद दोनों प्रथमा विभक्ति एकवचन के है। कर्मधारय का ही एक भेद द्विगु है। जब प्रथम पद संख्यावाचक हो तो 'द्विगु' समास होता है।

**१२३. द्विगुश्च २।१।२३।।**

**द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात्।**

द्विगु समास भी तत्पुरुष संज्ञक होता है।

द्विगु (दो गाय) में प्रथम पद 'द्वि' संख्यावाचक तथा दूसरा पद 'गु' संज्ञा है। अतः हम कह सकते हैं कि जिस समास का प्रथम पद संख्यावाचक और दूसरा पद कोई संज्ञा हो वह द्विगु समास भी 'तत्पुरुष' समास कहा जाता है।

**१२४. द्वितीया श्रिताऽतीत-पतित-गताऽत्यस्त-प्राप्ताऽऽपन्नैः। २।१।२४।।**

**द्वितीयान्तं श्रिताऽऽदि-प्रकृतिकैः सुबन्तैः सह समस्यते वा, स च तत्पुरुषः।**

जब द्वितीयान्त (द्वितीया विभक्ति से अन्त होने वाले) पद का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न इन प्रातिपदिक सुनन्तों के साथ विकल्प से समास होता है और उसे 'तत्पुरुष' समास कहते हैं।

**कृष्णश्रितः** (कृष्ण के आश्रित)

'कृष्णं श्रितः' लौकिक विग्रह, 'कृष्ण अम् श्रित सु' अलौकिक विग्रह में 'द्वितीयाश्रिताऽतीत०' से द्वितीयान्त 'कृष्ण अम्' का 'श्रित सु' सुबन्त पद के साथ द्वितीया तत्पुरुष समास हुआ यहाँ 'द्वितीया' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'कृष्ण अम्' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'कृष्ण अम्' का पूर्व प्रयोग-कृष्ण अम् श्रित सु।'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'अम्' और 'सु' का लोप-कृष्णश्रित। 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से 'कृष्णश्रित' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-कृष्णश्रित सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-कृष्णश्रित स्। 'ससजुषोः रुः' से 'स्' को 'रु', 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-कृष्णश्रितर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग (:) आदेश होकर 'कृष्णश्रितः' सिद्ध हुआ।

'अतीत' के साथ द्वितीयान्त का समास—

**दुःखातीतः** (दुःख को पार किया हुआ)

'दुःखं अतीतः' लौकिक विग्रह, 'दुःख अम् अतीत सु' अलौकिक विग्रह शेष समास आदि कार्य 'कृष्णश्रितः' की तरह होकर 'दुःखातीतः' बनेगा।

'पतित' के साथ द्वितीयान्त का समास—

**नरकपतितः** (नरक में गिरा हुआ)

'नरकं पतितः' लौकिक विग्रह, 'नरक अम् पतित सु' अलौकिक विग्रह शेष समास आदि कार्य 'कृष्णश्रितः' की तरह होकर 'नरकपतितः' बनेगा।

'गत' (गया हुआ) के साथ द्वितीयान्त का समास—

**स्वर्गगतः** (स्वर्ग को गया हुआ)

'स्वर्ग गतः' लौकिक विग्रह, 'स्वर्ग अम् गत सु' अलौकिक विग्रह शेष समास आदि कार्य 'कृष्णश्रितः' की तरह होकर '**स्वर्गगतः**' बनेगा।

'अत्यस्त' (फेंका हुआ) के साथ द्वितीयान्त का समास—

**कूपात्यस्तः** (कुएँ में फेका हुआ)

'कूपम् अत्यस्तः' लौकिक विग्रह, 'कूप अम् अत्यस्त सु' अलौकिक विग्रह शेष समास आदि कार्य 'कृष्णश्रितः' की तरह होकर '**कूपात्यस्तः**' बनेगा।

'प्राप्त' (पहुँचा हुआ) के साथ द्वितीयान्त का समास—

**सुखप्राप्तः** (सुख को पाया हुआ)

'सुखं प्राप्तः' लौकिक विग्रह, 'सुख अम् प्राप्त सु' अलौकिक विग्रह शेष समास आदि कार्य 'कृष्णश्रितः' की तरह होकर '**सुखप्राप्तः**' बनेगा।

'आपन्न' (पड़ा हुआ) के साथ द्वितीयान्त का समास—

**संकटापन्नः** (संकट में पड़ा हुआ)

'संकटम् आपन्नः' लौकिक विग्रह, 'संकट अम् आपन्न सु' अलौकिक विग्रह शेष समास आदि कार्य 'कृष्णश्रितः' की तरह होकर '**संकटापन्नः**' बनेगा।

**९२५. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २।१।३०।।**

**तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृत-गुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत्। शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः। धान्येनार्थो धान्यार्थः। तत्कृतेति किम् अक्ष्णा काणः।**

तृतीयान्त (तृतीया विभक्ति से अन्त होने वाले) विभक्ति के सुबन्त का तृतीयान्त के अर्थ के साथ किये गये गुणवाचक शब्द के साथ और अर्थ के साथ विकल्प से समास होता है और वह तत्पुरुष समास होता है।

**शङ्कुलाखण्डः** (सरौते से किया हुआ टुकड़ा)

'शङ्कुलया खण्डः' लौकिक विग्रह, 'शङ्कुला टा खण्ड सु' अलौकिक विग्रह में 'तृतीयातत्कृतार्थेन गुणवचने' से 'शङ्कुला टा' तृतीयान्त पद का गुणवाचक 'खण्ड सु' पद के साथ समास हुआ। यहाँ 'तृतीया' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'शङ्कुला टा' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'शङ्कुला टा' का पूर्व प्रयोग-शङ्कुला टा खण्ड सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'टा' और 'सु' का लोप-शङ्कुलाखण्ड। 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से 'शङ्कुलाखण्ड' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-शङ्कुलाखण्ड सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-शङ्कुलाखण्ड स्। 'ससजुषोः रुः' से 'स्' को 'रु', 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-शङ्कुलाखण्डर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा 'खरवसान-योर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग (ः) आदेश होकर 'शङ्कुलाखण्डः' सिद्ध हुआ।

**धान्यार्थः** (धान्य से प्रयोजन)

'धान्येन अर्थः' लौकिक विग्रह, 'धान्य टा अर्थ सु' अलौकिक विग्रह में 'तृतीया-तत्कृतार्थेन गुणवचने' से 'धान्य टा' तृतीयान्त पद का 'अर्थ सु' पद के साथ समास हुआ शेष समास आदि कार्य 'शङ्कुलाखण्डः' की तरह होकर '**धान्यार्थः**' सिद्ध होगा।

परिभाषा में 'तत्कृत' का अभिप्राय है जब तृतीयान्त का गुणवाचक शब्द के सामास हो तब वह तृतीयान्त अर्थ द्वारा ही कृत (किया गया) हो अर्थात् वह कार्य या गुण उसी तृतीयान्त अर्थ द्वारा किया गया हो।

**जैसे**–'शङ्कुलाखण्ड:' में 'खण्ड' गुणवाचक है वह तृतीयान्त अर्थ 'शङ्कुल' के द्वारा कृत है, किन्तु 'अक्ष्णा काण:' (आँख से काना) में 'काणत्व' गुण आँख से नहीं किया गया है बल्कि अन्य रोग या चोट द्वारा कृत है। अत: 'अक्ष्णा काण:' समास नहीं हुआ है।

**९२६. कर्तृकरणे कृता बहुलम् २।१।३२।।**

**कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत्। हरिणा त्रात:-हरित्रात:। नखैर्भिन्न: नखभिन्न:।**

कर्ता और करण के अर्थ में विद्यमान तृतीयान्त पद का कृदन्त के साथ बहुलता (विकल्प) से तत्पुरुष समास होता है।

**हरित्रात:** (हरि से रक्षित किया हुआ)

'हरिणा त्रात:' लौकिक विग्रह, 'हरि टा त्रात सु' अलौकिक विग्रह में 'कर्तृकरणेकृताबहुलम्' से कर्ता अर्थ में तृतीयान्त 'हरि टा' का 'त्रात सु' कृदन्त पद के साथ 'तृतीया तत्पुरुष समास हुआ।' यहाँ 'तृतीया' पद प्रथमान्त है। अत: प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् से 'हरि टा' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'हरि टा' का पूर्व प्रयोग-हरि टा त्रात सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्यय: प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से सुप् 'टा' और 'सु' का लोप-हरित्रात। 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से 'हरित्रात' को पुन: प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-हरित्रात सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-हरित्रात स्। 'ससजुषो: रु:' से 'स्' को 'रु', 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-हरित्रातर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा तथा 'खरवसानयोर्विसर्जनीय:' से 'र्' को विसर्ग (:) आदेश होकर 'हरित्रात:' सिद्ध हुआ।

**नखैर्भिन्न:** (नाखूनों से फाड़ा हुआ)

'नखै: भिन्न:' लौकिक विग्रह, 'नख भिस् भिन्न सु' अलौकिक विग्रह में कर्तृकरणेकृताबहुलम् से करण अर्थ में तृतीयान्त 'नख भिस्' का 'भिन्न सु' कृदन्त पद के साथ तृतीया तत्पुरुष समास हुआ। शेष समास आदि कार्य 'हरित्रात:' की तरह होकर तथा 'र्' को विसर्ग (:) आदेश होकर 'नखभिन्न:' सिद्ध होगा।

**(परिभाषा) कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्। नखै: निर्भिन्न:।**

कृदन्त के ग्रहण में 'गति' (प्र परा आदि उपसर्ग) और 'कारक' (कर्म आदि कारक) जिस कृदन्त के पूर्व में हों तो उस कृदन्त के साथ विकल्प से समास होता है।

जैसे–'नखनिर्भिन्न:'-'नखै: निर्भिन्न:' में कृदन्त 'भिन्न:' (भिद् + क्त) के पूर्व में गति (निर्) उपसर्ग लगा है। अत: यहाँ प्रकृत सूत्र से विकल्प से समास होगा।

'नखै: निर्भिन्न:' लौकिक विग्रह, 'नख भिस् निर्भिन्न सु' अलौकिक विग्रह में 'कर्तृकरणेकृताबहुलम्' से तृतीयान्त 'नख भिस्' का 'निर्भिन्न सु' कृदन्त पद के साथ विकल्प से तृतीया तत्पुरुष समास हुआ यहाँ 'तृतीया' पद प्रथमान्त है। अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं

समास उपसर्जनम्' से 'नख भिस्' की उपसर्जन संज्ञा। शेष कार्य 'हरित्रातः' की तरह होकर तथा विसर्ग (:) आदेश होकर 'नखनिर्भिन्नः' सिद्ध होगा।

**९२७. चतुर्थी तदर्थार्थ-बलि-हित-सुख-रक्षितैः २।१।३६।।**

**चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत्। यूपाय दारु यूपदारु। तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः, तेनेह न रन्धनाय स्थाली।**

चतुर्थ्यन्त (चतुर्थ विभक्ति से अन्त होने वाल) पद का उसके वाचक पद के साथ तथा अर्थ (के लिए), बलि (उपहार), हित (कल्याण), सुख और रक्षित शब्दों के साथ विकल्प समास होता है।

**यूपदारु** (यज्ञ स्तम्भ के लिए लकड़ी)

'यूपाय दारु' लौकिक विग्रह, 'यूप ङे दारु सु' अलौकिक विग्रह में 'चतुर्थीतदर्थार्थ०' से चतुर्थ्यन्त 'यूप ङे' का उसके वाचक पद 'दारु सु' के साथ चतुर्थी तत्पुरुष समास हुआ यहाँ 'चतुर्थी' पद प्रथमान्त है। अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'यूप ङे' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'यूप ङे' का पूर्व प्रयोग-यूप ङे दारु सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङे' और 'सु' का लोप- यूपदारु। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से 'यूपदारु' नपुसंकलिंग हुआ। 'एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'यूपदारु' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय- यूपदारु सु। 'स्वमोर्नपुसंकात्' से 'सु' का लोप होकर 'यूपदारु' सिद्ध हुआ।

सूत्र में 'तदर्थवाचक' के साथ समास कहने का तात्पर्य है— जहाँ प्रकृति-विकृतिभाव हो, वहीं समास होगा अर्थात् दोनों पदों में से पूर्व में आया पद विकार वाला हो, और उत्तर वाला पद प्रकृति। जैसे—'यूपदारु' में 'यूप' चतुर्थ्यन्त पद विकृति का तथा 'दारु' प्रकृति का समास हुआ है। 'रन्धनाय स्थाली' (राधने या पकाने के लिए स्थाली) में 'रन्धन' चतुर्थ्यन्त पद विकार नहीं है बल्कि क्रिया है, वहीं उत्तरपद स्थाली प्रकृति भी नहीं है वह तो द्रव्य है। अत: यहाँ समास नहीं होगा। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रकृति-विकृतिभाव दो द्रव्यों में हुआ करता है, द्रव्य और क्रिया में नहीं।

**(वार्तिक) अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। द्विजार्थः सूपः। द्विजार्था यवागूः। द्विजार्थं पयः। भूतबलिम्। गोहितम्। गोसुखम्। गोरक्षितम्।**

अर्थ शब्द के साथ नित्य समास होता है और समस्त पद का लिंग विशेष्य के अनुसार होता है। जैसे—१. पुल्लिङ्ग-'द्विजार्थः सूपः'—'द्विजाय अयं द्विजार्थः' (द्विज के लिए सूप) में 'सूपः' विशेष्य है और पुल्लिङ्ग है। अतः समस्त पद 'द्विजार्थः' भी पुल्लिङ्ग हुआ। २. स्त्रीलिंग-'द्विजार्था यवागूः'—'द्विजाय इयम् द्विजार्था' (द्विज के लिए लप्सी) में 'यवागूः' विशेष्य है और स्त्रीलिंग है। अतः समस्त पद 'द्विजार्था' भी स्त्रीलिंग है। ३. नपुसंकलिंग-'द्विजार्थं पयः'—'द्विजाय इदम् द्विजार्थं' (द्विज के लिए दूध) में 'पयः' नपुसंकलिंग विशेष्य के अनुसार 'द्विजार्थं' यह समस्त पद भी नपुसंकलिंग बना है।

**भूतबलिः** (प्राणियों के लिए उपहार)

'भूतेभ्यः बलिः' लौकिक विग्रह, 'भूत भ्यस् बलि सु' अलौकिक विग्रह में 'चतर्थी तदर्थार्थबलि०' से चतुर्थ्यन्त 'भूत भ्यस्' का 'बलि सु' पद के साथ चतुर्थी

तत्पुरुष समास हुआ यहाँ 'चतुर्थी' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'भूत भ्यस्' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'भूत भ्यस्' का पूर्व प्रयोग 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'भ्यस्' और 'सु' का लोप-भूतबलि। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'भूतबलि' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-भूतबलि सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-भूतबलि स्। 'ससजुषोः रुः' से 'स्' को 'रु', 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-भूतबलिर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा तथा 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग (:) आदेश होकर 'भूतबलिः' सिद्ध हुआ।

**गोहितम्** (गायों के लिए हित)

'गोभ्यः हितम्' लौकिक विग्रह, 'गो भ्यस्' हित सु अलौकिक विग्रह में 'चतुर्थी तदर्थार्थबलि०' से चतुर्थ्यन्त 'गो भ्यस्' का 'हित सु' पद के साथ चतुर्थी तत्पुरुष समास हुआ। यहाँ 'चतुर्थी' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'गो भ्यस्' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'गो भ्यस्' का पूर्व प्रयोग 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'भ्यस्' और 'सु' का लोप-गोहित। 'परवल्लिङ्ग द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से नपुसंकलिंग हुआ। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'गोहित' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय-गोहित सु। 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्' आदेश- गोहित अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'गोहितम्' सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'गोसुखम्' और 'गोरक्षितम्' भी सिद्ध होगा।

**१२८. पञ्चमी भयेन २।१।३७।**

**चोराद् भयम् चोरभयम्।**

पञ्चमी विभक्ति से अन्त होने वाले भयवाचक पद के साथ पञ्चमी तत्पुरुष समास होता है।

**चोरभयम्** (चोर से भय)

'चोराद् भयम्' लौकिक विग्रह, 'चोर ङसि भय सु' अलौकिक विग्रह में 'पञ्चमी भयेन' से भयवाचक 'चोर ङसि' का 'भय सु' पद के साथ पञ्चमी तत्पुरुष समास हुआ। यहाँ 'पञ्चमी' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'चोर ङसि' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'चोर ङसि' का पूर्व प्रयोग 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङसि' और 'सु' का लोप-चोरभय। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'गोहित' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-चोरभय सु। 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्' आदेश-चोरभय अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'चोरभयम्' सिद्ध हुआ।

**१२९. स्तोकान्तिक-दूरार्थ-कृच्छ्राणि क्तेन २।१।३९।।**

स्तोक (थोड़ा), अन्तिक (समीप), दूर अर्थ बताने वाले और कृच्छ (कष्ट) इन पञ्चमी विभक्ति वाले पदों का 'क्त' प्रत्यय से अन्त होने वाले सुबन्त पदों के साथ समास होता है और वह 'तत्पुरुष' समास होता है।

**१३०. पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ६।३।२।।**

**अलुग् उत्तरपदे। स्तोकान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरादागतः। कृच्छ्रादागतः।**

स्तोक, अन्तिक, दूरार्थवाचक और कृच्छ आदि पदों के बाद पञ्चमी का लोप नहीं होता है, यदि बाद में उत्तरपद हो तो।

**स्तोकान्मुक्तः** (थोड़े से मुक्त)

'स्तोकाद् मुक्तः' लौकिक विग्रह, 'स्तोक ङसि मुक्त सु' अलौकिक विग्रह में 'स्तोकान्तिकदूरार्थ०' से पञ्चम्यन्त 'स्तोक ङसि' का 'क्त' प्रत्ययान्त 'मुक्त सु' पद के साथ 'पञ्चमी' तत्पुरुष समास हुआ यहाँ पञ्चम्यन्त 'स्तोकादि' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'स्तोक ङसि' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'स्तोक ङसि' का पूर्व प्रयोग-स्तोक ङसि मुक्त सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङसि' और 'सु' का लोप किन्तु 'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः' से पञ्चमी के 'ङसि' का लोप नहीं होगा। 'टाङसिङसामिनात्स्याः' से 'ङसि' को 'आत्' आदेश-स्तोकात् मुक्त। 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' से 'त्' को 'न्' आदेश-स्तोकान्मुक्त। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'स्तोकान्मुक्त' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-स्तोकान्मुक्त सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-स्तोकान्मुक्त स्। 'ससजुषो रुः' से 'स्' को 'रु', 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-स्तोकान्मुक्तर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग (:) आदेश होकर 'स्तोकान्मुक्तः' सिद्ध हुआ।

**अन्तिकादागतः** (पास से आया)

'अन्तिकात् आगतः' लौकिक विग्रह, 'अन्तिक ङसि आगत सु' अलौकिक विग्रह में 'स्तोकान्तिकदूरार्थ०' से पञ्चम्यन्त 'अन्तिकात् ङसि' का 'क्त' प्रत्ययान्त 'आगत सु' पद के साथ पञ्चमी तत्पुरुष समास हुआ यहाँ 'पञ्चमी' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'स्तोक ङसि' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'स्तोक ङसि' का पूर्व प्रयोग-अन्तिक ङसि आगत सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङसि' और 'सु' का लोप किन्तु 'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः' से पञ्चमी के 'ङसि' का लोप नहीं होगा केवल सु लोप। 'टाङसिङसामिनात्स्याः' से 'ङसि' को 'आत्' आदेश-अन्तिकआत् आगत। 'झलां जशोऽन्ते' से 'त्' को 'द्' आदेश-अन्तिकादागत। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'अन्तिकादागत' को पुनः प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-अन्तिकादागत सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-अन्तिकादागत स्। 'ससजुषो रुः' से 'स्' को 'रु', 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-अन्तिकादागतर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग (:) आदेश होकर 'अन्तिकादागतः' सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'दूरादागतः'-दूर से आया हुआ (लौ० वि० 'दूराद् आगतः', अलौ० वि०-'दूर ङसि आगत सु') 'अभ्याशादागतः'-पास से आया हुआ (लौ० वि० 'अभ्याशात्

आगत:,' अलौ० वि० 'अभ्याश ङसि आगत सु') और 'कृच्छ्रादागत:'-कष्ट से आया हुआ (लौ० वि० 'कृच्छ्रात् आगत:', अलौ० वि० 'कृच्छ्र ङसि आगत सु') में समास आदि कार्य की सिद्धि होगी।

**९३१. षष्ठी २।२।८।।**

**सुबन्तेन प्राग्वत्। राजपुरुषः।**

षष्ठ्यन्त (षष्ठी विभक्ति से अन्त होने वाले) सुबन्त पद का सुबन्त के साथ समास होता है और वह षष्ठी तत्पुरुष समास होता है।

**राजपुरुष** (राजा का आदमी, सरकारी आदमी)

'राज्ञ: पुरुष:' लौकिक विग्रह, 'राजन् ङस् पुरुष सु' अलौकिक विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से षष्ठ्यन्त 'राज्ञ ङस्' का सुबन्त पद 'पुरुष सु' पद के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ यहाँ 'षष्ठ्यन्त' पद प्रथमान्त है। अत: 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'राजन् ङस्' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'राजन् ङस्' का पूर्व प्रयोग-राजन् ङस् पुरुष सु।'अर्थवदधातुरप्रत्यय: प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' से सुप् 'ङस्' और 'सु' का लोप-राजन् पुरुष। 'न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य' से 'न्' को लोप-राज पुरुष। एकदेशविकृतमनन्यवत् परिभाषा से 'राजपुरुष' को पुन: प्रातिपदिक संज्ञक मानकर प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-राजपुरुष सु। 'उपदेशऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-राजपुरुष स्। 'ससजुषो रु:' से 'स्' को 'रु', 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-राजपुरुषर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा। 'खरवसानयोर्विसर्जनीय:' से 'र्' को विसर्ग (:) आदेश होकर 'राजपुरुष:' सिद्ध हुआ।

**९३२. पूर्वाऽपराऽधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे २।२।१।।**

**अवयविना सह पूर्वादय: समस्यन्ते, एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी। षष्ठी-समासऽपवाद:। पूर्व कार्यस्य पूर्वकाय:। अपरकाय:। एकाधिकरणे किम्? पूर्वश्छात्राणाम्।**

पूर्व (आगे का), अपर (पीछे का), अधर (नीचे का) और उत्तर (ऊपर का) इन अवयववाचक शब्दों का अवयवीवाचक शब्दों के साथ समास होता है यदि अवयवी एकवचन में प्रयुक्त हुआ हो तो, इसमें चार बातें मुख्य हैं—

१. एकदेशी का अर्थ है अवयवी और एकदेश को अवयव कहा गया है।

२. एकाधिकरण का अर्थ है एकवचन में अर्थात् जब अवयवी एकवचन में प्रयुक्त हुआ हो।

३. यह षष्ठी समास का अपवाद है।

४. सूत्र में 'पूर्वाऽपराऽधरोत्तरम्' पद प्रथमान्त है। षष्ठी विभक्ति में समास होने पर षष्ठ्यन्त का पहले प्रयोग होगा।

**पूर्वकाय:** (शरीर का अगला भाग)

'पूर्व कायस्य:' लौकिक विग्रह, 'पूर्व अम् काय ङस्' अलौकिक विग्रह में 'पूर्वाऽपरा०' सूत्र से अवयववाचक 'पूर्व अम्' का अवयवी 'काय सु' पद के साथ षष्ठी

तत्पुरुष समास हुआ। यहाँ 'पूर्वाऽपरादि' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से पूर्व 'अम्' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम् से 'पूर्व अम्' का पूर्व प्रयोग-पूर्व अम् काय ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'अम्' और 'ङस्' का लोप-पूर्वकाय। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लाने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग (:) आदेश होकर 'पूर्वकायः' सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'अपरकायः'—शरीर का पिछला भाग (लौ०वि०-'अपरं कायस्य', अलौ० वि०-'काय ङस् अपर सु) की सिद्धि भी 'पूर्वकायः' की तरह होगी।

**एकाधिकरणे किम्** ? अवयवी एकवचन में होने पर ही यह समास होगा, बहुवचन होने पर नहीं। जैसे—'पूर्वश्छात्राणाम्' (छात्रों में पहला) में अवयवी 'छात्राणाम्' बहुवचन वाला है अतः समास नहीं होगा।

**९३३. अर्धं नपुंसकम् २।२।२।।**

**समांशवाची—अर्धशब्दो नित्यं क्लीबे, स प्राग्वत्। अर्धं पिप्पल्याः अर्धपिप्पली।**

समान अंश = भाग (बराबर आधे) के वाचक नित्य नपुसंकलिंग अर्ध शब्द का अवयवी के साथ तत्पुरुष समास होता है। यह समास भी षष्ठी का अपवाद है।

**अर्धपिप्पली** (पीपल का आधा भाग)

'अर्ध पिप्पल्याः' लौकिक विग्रह, 'अर्ध अम् पिप्पली ङस्' अलौकिक विग्रह में 'अर्धं नपुसंकम्' सूत्र से नपुंसकलिंग अर्धवाचक 'अर्ध अम्' का अवयवी 'पिप्पली ङस्' पद के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ। यहाँ 'अर्ध' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'अर्ध अम्' की उपसर्जन संज्ञा।'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'अर्ध अम्' का पूर्व प्रयोग-अर्ध अम् पिप्पली ङस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'अम्' और 'ङस्' का लोप-अर्धपिप्पली। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लाने पर-अर्धपिप्पली सु। 'हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से हल् 'सु' का लोप होकर 'अर्धपिप्पली' सिद्ध हुआ।

**९३४. सप्तमी शौण्डैः २।१।४०।।**

**सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत्। अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्डः। इत्यादि।**

सप्तम्यन्त (सप्तमी विभक्ति से अन्त होने वाले) सुबन्त पद का शौण्ड आदि शब्दों के साथ सप्तमी तत्पुरुष समास होता है।

यहाँ शौण्डादि कहने से—शौण्डादिगण में पठित शौण्ड, धूर्त, कितव, व्याड और प्रवीण आदि शब्दों का ग्रहण हो जाता है।

**अक्षशौण्डः** (पासा खेलने में चतुर)

'अक्षेषु शौण्डः' लौकिक विग्रह, 'अक्ष सुप् शौण्ड सु' अलौकिक विग्रह में 'सप्तमी शौण्डैः' सूत्र से सप्तम्यन्त 'अक्ष सुप्' का 'शौण्ड सु' के साथ सप्तमी तत्पुरुष समास हुआ यहाँ सप्तमी 'अक्ष सुप्' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'अक्ष सुप्' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'अक्ष सुप्' का पूर्व

प्रयोग- अक्ष सुप् शौण्ड सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' और 'सु' का लोप-अक्षशौण्ड। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लाने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग (:) आदेश होकर 'अक्षशौण्डः' सिद्ध हुआ।

**द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात् समासो ज्ञेयः।**

द्वितीया, तृतीया, आदि समास करने वाले सूत्रों में से पूर्व में 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' तथा 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' या अन्य सुबन्तों के साथ समास के विशेष नियम हैं। अतः इन द्वितीया, तृतीया आदि का योग विभाग कर समास के जो नियम दिये गये हैं उनसे भिन्न सुबन्त पदों के साथ अन्यत्र भी प्रयोग के अधार पर द्वितीया, तृतीया आदि विभक्तियों को समझना चाहिए।

**९३५. दिक्संख्ये संज्ञायाम् २।१।५०।।**

**पूर्वेषुकामशमी। सप्तर्षयः। संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम्, तेनेह न—उत्तरा वृक्षाः, पचिंब्राह्मणाः।**

संज्ञा के विषय में दिशावाची और संख्यावाची सुबन्त पदों का समानाधिकरण वाले (जिनका आधार समान हो) पदों के साथ तत्पुरुष समास होता है।

**पूर्वेषुकामशमी** (एक प्राचीन गाँव का नाम)

'पूर्वा चासौः इषुकामशमी' लौकिक विग्रह, 'पूर्वा सु इषुकामशमिन् सु' अलौकिक विग्रह में 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' सूत्र से दिशावाचक 'पूर्व सु' का 'इषुकामशमिन् सु' पद के साथ समानाधिकरण तत्पुरुष समास हुआ। यहाँ 'दिशावाचक' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'पूर्व सु' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम् से 'पूर्व सु' का पूर्व प्रयोग-पूर्व सु इषुकाशमिन् सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् सु का लोप-पूर्व इषुकामशमिन्। 'आद्गुणः' से अ + इ = ए गुण एकादेश-पूर्वेषुकामशमिन्। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लाने पर-पूर्वेषुकामशमिन् सु। सम्बुद्धि भिन्न प्रत्यय परे रहते 'सौ च' सूत्र से इन्नन्त उपधा को दीर्घ-पूर्वेषुकामशमीन् सु। 'हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से हल् 'सु' का लोप-पूर्वेषुकामशमीन्। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से 'न्' का लोप होकर 'पूर्वेषुकामशमी' सिद्ध हुआ।

**सप्तर्षयः** (सात ऋषियों का समूह)

'सप्त च ते ऋषयः' लौकिक विग्रह, 'सप्तन् जस् ऋषि जस्' अलौकिक विग्रह में 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' सूत्र से संख्यावाचक 'सप्तन् जस्' का 'ऋषि जस्' पद के साथ तत्पुरुष समास हुआ। यहाँ संख्यावाचक 'सप्तन् पद' प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'सप्तन् जस्' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'सप्तन् जस्' का पूर्व प्रयोग-सप्तन् जस् ऋषि जस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'जस्' का लोप-सप्तन्ऋषि।'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से 'न्' का लोप-सप्त ऋषि। 'आद्गुणः' से गुण 'अ' तथा उरण् रपरः से 'र्' से युक्त 'अर्' आदेश- सप्तर्षि। प्रथमा बहुवचन में

'जस्' प्रत्यय लाने पर, जकार का अनुबन्ध लोप-सप्तर्षि अस्। इ + अ = ए एक गुण आदेश-सप्तर्षे अस्। 'एचोऽयवायावः' से 'ए' को 'अय्' आदेश-सप्तर्षि अय् अस्-सप्तर्षयस्। फिर 'स्' का रुत्व विसर्ग होकर 'सप्तर्षयः' सिद्ध हुआ।

यहाँ 'संज्ञायाम्' कहने का तात्पर्य है कि संज्ञा (नाम) के विषय में ही दिशावाचाक और संख्यावाचक सुबन्त पदों का यह समास होता है। किसी अन्य अर्थ में नहीं। जैसे—'उत्तरावृक्षाः' (उत्तर के पेड़) में दिशावाचक उत्तरा पद होने पर भी, संज्ञा न होने के कारण समास नहीं हुआ। इसी प्रकार 'पञ्चब्राह्मणाः' (पाँच ब्राह्मण) में संख्यावाचक 'पञ्च' पद होने पर भी संज्ञा न होने कारण समास नहीं हुआ।

**९३६. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २।१।५१।।**

**तद्धितार्थे विषये, उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये, दिक्संख्ये प्राग्वत्। पूर्वस्यां शालायां भवः पूर्वशाला, इति समासे जाते।**

तद्धितार्थ के विषय में, उत्तरपद परे होने पर और समाहार (समूह) कहना हो तो दिशावाचक और संख्यावाचक सुबन्त पदों का समानाधिकरण वाले सुबन्त के साथ समास होता है।

**पौर्वशालः** (पूर्व की शाला में होने वाला)

'पूर्वस्यां शालायां भवः' लौकिक विग्रह, 'पूर्वा ङि शाला ङि' अलौकिक विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से 'भवः' इस तद्धित के अर्थ में दिशावाचक 'पूर्वा ङि का' सुबन्त पद 'शाला ङि' के साथ समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा।'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङि' का लोप-पूर्वा शाला। इस स्थिति में—

**(वार्तिक) सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः।**

सर्वनाम शब्दों को वृत्तिमात्र (कृत्, तद्धित, समास आदि पाँचों वृत्तियों) में पुंवद्भाव होता है।

पूर्वशाला में पूर्वा पद सर्वनाम है अतः 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' वार्तिक से पुंवद्भाव (पुल्लिङ्ग) होकर, 'टाप्' आ का लोप- पूर्वशाला। इस स्थिति में—

**९३७. दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ४।२।१०७।।**

**अस्माद् भवार्थे ञः स्याद् असंज्ञायाम्।**

दिशावाचक शब्द पहले होने पर 'भवः' (होने वाला) आदि तद्धित अर्थों में ञ (अ) प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में न हो।

उक्त उदाहरण में दिशावाचक 'पूर्व' शब्द पहले होने पर 'तद्धितार्थ भवः' अर्थ में 'दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः' से 'ञ' (अ) प्रत्यय, 'ञ्' का अनुबन्ध लोप-पूर्वशाला अ। इस स्थिति में—

**९३८. तद्धितेष्वचामादेः ७।२।११७।**

**ञिति णिति च तद्धितेष्वचामादेरचो वृद्धि स्यात्। यस्येति च। पौर्वशालः। पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ।**

ञिति और णिति तद्धित प्रत्यय परे रहते अंग के अचों (स्वरों) में से आदि (पहले) अच् की वृद्धि हो जाती है। ञिति का अर्थ है जिसका ञ् इत्संज्ञक हो, और णिति का अर्थ है जिसका ण् इत्संज्ञक हो।

पूर्वशाला में ञ (अ) तद्धित प्रत्यय परे होने पर 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदि 'अच्' 'ऊ' को वृद्धि 'औ' आदेश-प् औ र्व शाला अ। 'यस्येति च' से तद्धित प्रत्यय परे रहते शाला के 'आ' का लोप-पौर्वशाल् अ। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग करने पर पौर्वशालः सिद्ध हुआ।

तीन पदों वाले बहुव्रीहि समास का उदाहरण—

**पञ्चगवधनः** (पाँच गायें हैं धन जिसका)

'पञ्च गावो धनं यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'पञ्चन् जस् गो जस् धन सु' अलौकिक विग्रह में त्रिपद बहुव्रीहि में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से धनं उत्तरपद परे रहते 'पञ्च' और 'गावः' का तत्पुरुष समास हुआ। इस स्थिति में—

**(वार्तिक) द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्।**

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में उत्तरपद परे हो तो उनको नित्य समास कहना चाहिए। 'पञ्चन् जस् गो जस् धन सु' में धनं उत्तरपद परे होने पर नित्य समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'जस्' और 'सु' का लोप-पञ्च गो धन। इस स्थिति में—

**९३९. गोरतद्धितलुकि ५।४।९२।।**

**गोऽन्तात् तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि। पञ्चगवधनः।**

'गो' शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे तत्पुरुष से समासान्त 'टच्' (अ) प्रत्यय होता है, किन्तु तद्धित प्रत्यय के लोप होने पर नहीं होगा।

'पञ्च गो' तत्पुरुष में 'गो' शब्द अन्त में है अतः 'गोरतद्धितलुकि' से 'गो' को 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के 'ट्' और 'च्' का अनुबन्ध लोप-पञ्च गो अ धन। 'एचोऽयवायावः' से गो के 'ओ' को 'अव्'-पञ्च ग् अव् अ धन। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'पञ्चगवधनः' सिद्ध हुआ।

**९४०. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः १।२।४२।।**

समानाधिकरण तत्पुरुष को कर्मधारय कहते हैं।

समानाधिकरण का तात्पर्य है समान आधार वाला। अर्थात् जब पूर्वपद और उत्तरपद दोनों पदों की विभक्तियों का एक ही आधार होता है तो उसे कर्मधारय समास कहते हैं। जैसे—नीलं च तत् उत्पलं च इति नीलोत्पलम् में नील और उत्पल दोनों पदों का आधार एक ही 'पुष्प' है।

**९४१. संख्यापूर्वो द्विगुः २।१।५२।।**

**तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात्।**

तद्धितार्थ, उत्तरपद और समाहार में यदि संख्यावाचक पद पूर्व में हो तो उसे द्विगु समास कहते हैं। इस सूत्र के अर्थ लिए 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (९३६) सूत्र का अर्थ लिया जायगा। सूत्र में कहे गये तीनों स्थितियों—तद्धितार्थ में, उत्तरपद परे होने, समाहार के अर्थ में जब संख्यावाचक पद पूर्व में हो तो वह समास 'द्विगु' संज्ञक होता है

**९४२. द्विगुरेकवचनम् २।४।१।।**

**द्विग्वर्थः समाहार एकवत्स्यात्।**

द्विगु समास का अर्थ समाहार (समूह) में एकवत् (एकवचन) होता है।

**९४३. स नपुंसकम् २।४।१७।।**

**समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात्। पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम्।**

समाहार अर्थ में द्विगु और द्वन्द्व नपुंसकलिंग में होते हैं।

**पञ्चगवम्** (पाँच गायों का समूह)

'पञ्चानां गवां समाहारः' लौकिक विग्रह, 'पञ्चन् आम् गो आम्' अलौकिक विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से समाहार अर्थ में संख्यावाचक 'पंचन् आम्' का 'गो आम्' के साथ समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'आम्' का लोप-पञ्चन् गो। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से 'न्' का लोप- पञ्च गो। 'गोरतद्धितलुकि' से गो को 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के 'ट्' और 'च्' का अनुबन्ध लोप-पञ्च गो अ। 'एचोऽयवायावः' से 'ओ' को 'अव्' आदेश-पञ्च ग् अव् अ-पञ्चगव। 'संख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगु संज्ञा तथा द्विगुरेकवचनम् से एकवचन। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय कर, नपुंसकलिंग में अतोऽम् से 'सु' को अम्-पञ्चगव अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'पञ्चगवम्' सिद्ध हुआ।

**९४४. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २।१।५७।।**

**भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत्। नीलमुत्पलम्-नीलोत्पलम्। बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम्-कृष्णसर्पः। क्वचिन्न-रामो जामदग्न्यः।**

विशेषण का विशेष्य के साथ बहुलता (विकल्प) से समास होता है और वह कर्मधारय समास होता है। विशेषण को भेदक और विशेष्य को भेद्य कहते हैं। यहाँ विशेषण पद प्रथमान्त है, अतः विशेषण का पहले प्रयोग होगा।

**नीलोत्पलम्** (नीला कमल)

'नीलम् उत्पलम्' लौकिक विग्रह, 'नील सु उत्पल सु' अलौकिक विग्रह में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' से विशेषण 'नील सु' का विशेष्य 'उत्पल सु' के साथ समानाधिकरण तत्पुरुष या कर्मधारय समास हुआ। यहाँ 'विशेषण' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'नील सु' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'नील सु' का पूर्व प्रयोग-नील सु उत्पल सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' का लोप-नील उत्पल। 'आद्गुणः' से अ + उ = ओ गुण आदेश-नीलोत्पल। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-नीलोत्पल सु। नपुंसकलिंग में 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्' आदेश-नीलोत्पल अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'नीलोत्पलम्' सिद्ध हुआ।

सूत्र में 'बहुलम्' (विकल्प) कहने का तात्पर्य यह है कि कहीं तो विशेषण का विशेष्य के साथ नित्य समास होता है, किन्तु कहीं-कहीं समास नहीं भी होता है।

जैसे—'कृष्णसर्पः' (काला सर्प) में सर्प जब-जब क्रिया करता है तो कृष्णत्व (कालापन) उसके साथ ही रहता है, अतः नित्य समास है, किन्तु 'रामो जामदग्न्यः' (जमदग्नि के पुत्र राम-परशुराम) में विशेषण, विशेष्य और समानाधिकरण भी है फिर भी समास नहीं हुआ।

**१४५. उपमानानि सामान्यवचनैः २।१।५५।।**

**घन इव श्यामः-घनश्यामः।**

उपमानवाचक पद का साधारण धर्म वाले (उपमेय) पद के साथ समास होता है और वह कर्मधारय तत्पुरुष समास कहलाता है।

उपमान—जिससे समानता बतायी जाती है उसे उपमान कहते हैं।

उपमेय—जिसकी समानता बतायी जाती है उसे उपमेय कहते हैं।

साधारण धर्म—दो वस्तुओं में जो गुण या धर्म दोनों में समान रूप से विद्यमान होता है उसे साधारण धर्म कहते हैं।

**घनश्यामः** (बादल के समान कृष्ण वर्ण वाला)

'घन इव श्यामः' लौकिक विग्रह, 'घन सु श्याम सु' अलौकिक विग्रह में 'उपमानानि सामान्यवचनैः' सूत्र से उपमानवाचक 'घन सु' का साधारण धर्म वाले 'श्याम सु' के साथ कर्मधारय समास हुआ। यहाँ 'उपमानवाचक' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'घन सु' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'घन सु' का पूर्व प्रयोग-घन सु श्याम सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' का लोप-घन श्याम। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'घनश्यामः' सिद्ध हुआ।

**(वार्तिक)शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्। शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः। देवपूजको ब्राह्मणः देवब्राह्मणः।**

शाकपार्थिव आदि समासों की सिद्धि के लिए उत्तरपद का लोप-समझना चाहिए।

**शाकपार्थिवः** (शाक को पसन्द करने वाला)

'शाकप्रियः पार्थिवः' लौकिक विग्रह, 'शाकप्रिय सु पार्थिव सु' अलौकिक विग्रह में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' सूत्र से 'शाकप्रिय सु' का 'पार्थिव सु' के साथ समास हुआ। 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्' वार्तिक से 'शाकप्रिय' के उत्तरपद 'प्रिय' का लोप-शाक सु पार्थिव सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' का लोप-शाकपार्थिव। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'शाकपार्थिवः' सिद्ध हुआ।

**देवब्राह्मणः** (देवताओं को पूजने वाला ब्राह्मण)

'देवपूजको ब्राह्मणः' लौकिक विग्रह,

'देवपूजक सु ब्राह्मण सु' अलौकिक विग्रह में समास आदि कार्य 'शाकपार्थिवः' की तरह होकर 'देवब्राह्मणः' सिद्ध होगा।

**९४६. नञ् २।२।६।।**

**नञ् सुपा सह समस्यते।**

'नञ्' का सुबन्त पद के साथ समास होता है। 'नञ्' में 'न्' और 'ञ्' दोनों का लोप जाता है केवल 'अ' शेष रहता है। यहाँ 'नञ्' का अर्थ निषेधात्मक है।

**९४७. नलोपो नञः ६।३।७३।।**

**नञो नस्य लोप उत्तरपदे। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः।**

नञ् के न का लोप होता है उत्तरपद परे रहने पर।

**अब्राह्मणः** (ब्राह्मण से भिन्न)

'न ब्राह्मणः' लौकिक विग्रह, 'नञ् ब्राह्मण सु' अलौकिक विग्रह में 'नञ्' सूत्र से 'नञ्' का सुबन्त पद 'ब्राह्मण सु' के साथ नञ् तत्पुरुष समास हुआ। 'नञ्' के 'ञ्' का अनुबन्ध लोप–न ब्राह्मण सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' का लोप– न ब्राह्मण। 'न लोपो नञः' सूत्र से उत्तरपद 'ब्राह्मण' परे रहते 'न' के 'न्' का लोप 'अ' शेष–अब्राह्मण। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'अब्राह्मणः' सिद्ध हुआ।

**९४८. तस्मान्नुडचि ६।३।७४।।**

**लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेः नुट् आगमः स्यात्। अनश्वः। 'नैकधा' इत्यादौ तु न शब्देन सह सुप्सुपेति समासः।**

'नञ्' के 'न्' का लोप होने पर, उससे परे अजादि (स्वर) उत्तरपद को 'नुट्' का आगम होता है।

**अनश्वः** (घोड़े से भिन्न)

'न अश्वः' लौकिक विग्रह, 'नञ् अश्व सु' अलौकिक विग्रह में 'नञ्' सूत्र से 'नञ्' का सुबन्त पद 'अश्व सु' के साथ 'नञ्' तत्पुरुष समास हुआ। 'नञ्' के 'ञ्' का अनुबन्ध लोप–न अश्व सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' का लोप–न अश्व। 'न लोपो नञः' सूत्र से उत्तरपद 'अश्व' परे रहते 'न' के 'न्' का लोप 'अ' शेष–अ अश्व। 'तस्मान्नुडचि' सूत्र से अजादि उत्तरपद 'अश्व' परे रहते 'नुट्' का आगम, टित होने से 'आद्यान्तौ टकितौ' से आदि का अवयव बनेगा–अ नुट् अश्व । 'नुट्' के 'उट्' का अनुबन्ध लोप, 'न्' शेष–अ न् अश्व–अनश्व। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'अनश्वः' सिद्ध हुआ।

'नैकधा' (अनेक प्रकार से) में निषेधात्मक 'न' शब्द का एकधा शब्द के साथ 'सह सुपा' से समास। यह 'न', 'नञ्' से भिन्न है। इसलिए 'न' तो 'न्' का लोप और नहीं 'नुट्' का आगम होगा।

**९४९. कुगतिप्रादयः २।२।१८।।**

**एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते। कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः।**

कु, गतिसंज्ञक और प्रादि उपसर्गों का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य समास होता है, और वह तत्पुरुष समास होता है।

= कु शब्द अव्यय है जिसका अर्थ कुत्सित या बुरा है।

= प्र, परा आदि उपसर्ग शब्दों का जब क्रिया के साथ योग में समास होता है तो उसे 'गति तत्पुरुष' समास कहते हैं।

= प्रादि उपसर्गों से विशेषण-विशेष्य का अर्थ निकलता है, अतः यह भी एक प्रकार से कर्मधारय समास है।

= प्र, परा आदि उपसर्गों का प्रयोग ही प्रादि तत्पुरुष समास है।

**कुपुरुषः** (बुरा आदमी)

'कुत्सितः पुरुषः' लौकिक विग्रह, 'कु पुरुष सु' अलौकिक विग्रह में 'कुगतिप्रादयः' से अव्यय 'कु' का समर्थ सुबन्त 'पुरुष सु' के साथ तत्पुरुष समास हुआ। 'अर्थवद-धातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' का लोप-कु पुरुष। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-कुपुरुष सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-कुपुरुष स्। 'ससजुषो रुः' से 'स्' को 'रु', 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-कुपुरुषर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग (:) आदेश होकर 'कुपुरुषः' सिद्ध हुआ।

**९५०. ऊर्यादि-च्वि-डाचः च १।४।६१।।**

**ऊर्यादयः च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः। ऊरीकृत्य। शुक्लीकृत्य, पटपटाकृत्य। सुपुरुषः।**

'ऊरी' आदि, 'च्वि'-प्रत्ययान्त और 'डाच्' प्रत्ययान्त शब्द जब क्रिया के योग में आते हैं तो वे 'गति' संज्ञक होते हैं।

= यहाँ 'ऊरी' आदि का तात्पर्य-ऊर्यादिगण में पठित शब्दों ऊरी, ऊररी आदि से है।

= 'च्वि' प्रत्ययान्त अर्थात् जिसके अन्त में 'च्वि' प्रत्यय लगे हों।जैसे—अशुक्लं शुक्लं कृत्वा इति शुक्लीकृत्य (अश्वेत को श्वेत बनाकर)

= 'डाच्' प्रत्ययान्त अर्थात् जिसके अन्त में 'डाच्' प्रत्यय लगे हों। जैसे—पटत् पटत् इति कृत्वा पटपटाकृत्य (पट पट शब्द करके) यह 'डाच्' प्रत्ययान्त है।

**नोट**—कृ, भू और अस् क्रियाओं के साथ ही ऊर्यादि, च्वि प्रत्ययान्त और डाच् प्रत्ययान्त का योग हुआ करता है। 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' वार्तिक के अनुसार गति, कारक और उपपद का कृदन्त पदों के साथ 'सुप्' आने से पहले ही समास हो जाया करता है।

**ऊरीकृत्य** (स्वीकार करके)

'ऊरी कृत्वा' लौकिक विग्रह, 'ऊरी कृ क्त्वा' अलौकिक विग्रह में 'ऊर्यादि-च्वि-डाचश्च' सूत्र से 'ऊरी' शब्द की 'कृ 'धातु के योग में गति संज्ञा हुई तथा 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से ऊरी का 'कृ + क्त्वा' धातु से समास। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' सूत्र से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' प्रत्यय, 'ल्यप्' के 'ल्' और 'प्' का अनुबन्ध लोप 'य' शेष-ऊरी कृ य।

'ह्रस्वस्य पितिकृति तुक्' से 'तुक' का आगम, 'पित्' होने से 'आद्यान्तौ टकितौ' से अन्त का अवयव बनेगा-ऊरी कृ तुक् य। 'तुक्' के 'उक्' की इत्संज्ञा तथा लोप होकर 'ऊरीकृत्य' सिद्ध हुआ।

**शुक्लीकृत्य** (जो श्वेत नहीं है उसे श्वेत बनाकर)

'अशुक्लं शुक्लं कृत्वा' लौकिक विग्रह, 'शुक्ल कृ क्त्वा' अलौकिक विग्रह में 'अभूततद्भावे इति वक्तव्यम् वार्तिक' और 'कृभ्यस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्वि' से शुक्ल पद के 'अ' को 'अस्य च्वौ' सूत्र से 'ई' आदेश-शुक्ली। 'ऊर्यादि-च्वि-डाचश्च' सूत्र से गतिसंज्ञा तथा 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से 'शुक्ली' का 'कृ + क्त्वा' के साथ समास हुआ। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश, 'ल्यप्' के 'ल्' और 'प्' की इत्संज्ञा तथा लोप-शुक्ली कृ य। 'ह्रस्वस्य पितिकृति तुक्' से 'तुक' का आगम, 'पित्' होने से 'आद्यान्तौ टकितौ' से अन्त का अवयव बनेगा-शुक्ली कृ तुक् य, 'तुक्' के 'उक्' की इत्संज्ञा तथा लोप होकर 'शुक्लीकृत्य' सिद्ध हुआ।

**पटपटाकृत्य** (पट पट शब्द कर)

'पटत् पटत् इति कृत्वा' लौकिक विग्रह, 'पटत् डाच् कृ क्त्वा' अलौकिक विग्रह में 'अव्यक्ताऽनुकरणाद् द्वयजवरार्धाद् अनितौ डाच्' से 'पटत्' अव्यक्त ध्वनि का अनुकरण अर्थ में 'डाच्' प्रत्यय, 'डाच्' के 'ड्' और 'च्' का लोप, 'आ' शेष-पटत् आ। 'डाच्' प्रत्यय परे रहते 'पटत्' के टि 'अत्' का लोप-पट आ। 'डाचि च द्वे बहुलम्' से 'पट' का द्वित्व-पट पट आ-पटपटा। 'ऊर्यादि-च्वि-डाचश्च' सूत्र से गतिसंज्ञा तथा 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से पटपटा का 'कृ + क्त्वा' के साथ समास हुआ-पटपटा कृ क्त्वा। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश, 'ल्यप्' के 'ल्' और 'प्' की इत्संज्ञा तथा लोप-पटपटा कृ य। 'ह्रस्वस्य पितिकृति तुक्' से 'तुक' का आगम, 'पित्' होने से आद्यान्तौ टकितौ से अन्त का अवयव बनेगा-पटपटा कृ तुक् य, 'तुक्' के 'उक्' की इत्संज्ञा तथा लोप होकर 'पटपटाकृत्य' सिद्ध हुआ।

**सुपुरुषः** (अच्छा आदमी, सज्जन व्यक्ति)

'शोभनः पुरुषः' लौकिक विग्रह, 'सु पुरुष सु' अलौकिक विग्रह में 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से 'सु' प्रादि का सुबन्त पद 'पुरुष सु' साथ तत्पुरुष समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' का लोप-सु पुरुष। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-सुपुरुष सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-सुपुरुष स्। 'ससजुषो रुः' से 'स्' को 'रु', 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप-सुपुरुषर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा, 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग (:) आदेश होकर 'सुपुरुषः' सिद्ध हुआ।

**(वार्तिक) प्रादयो गताद्यर्थ प्रथमया। प्रगत आचार्यः प्राचार्यः।**

'प्र' आदि का प्रथमान्त पद के साथ गत आदि अर्थ में समास होता है। यहाँ 'प्र' का अर्थ-प्रगत अर्थात् प्रधान है।

**प्राचार्यः** (प्रधान आचार्य)

'प्रगत आचार्यः' लौकिक विग्रह, 'प्र आचार्य सु' अलौकिक विग्रह में 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' वार्तिक से गत आदि अर्थ में 'प्र' का प्रथमान्त 'आचार्य सु' के साथ

तत्पुरुष समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' का लोप–प्राचार्य। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'प्राचार्यः' सिद्ध हुआ।

**(वार्तिक) अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया। अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे।**

'अति' आदि का क्रान्त आदि अर्थ में द्वितीयान्त सुबन्त पद के साथ समास होता है, और यह 'अति' भी प्रादि के ही अन्तर्गत आता है।

**अतिमालः** (जो माला का अतिक्रमण कर गया हो)

'अतिक्रान्तो मालाम्' लौकिक विग्रह, 'माला अम् अति' अलौकिक विग्रह में 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' वार्तिक से 'क्रान्त' आदि अर्थ में 'प्रादि' का द्वितीयान्त सुबन्त पद 'माला अम्' के साथ 'प्रादि' तत्पुरुष समास हुआ। यहाँ 'अति' पद प्रथमान्त है। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'अति' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'अति' का पूर्व प्रयोग–अति माला अम्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'अम्' का लोप इस स्थिति में—

**९५१. एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते १।२।४४।।**

**विग्रहे यद् नियतविभक्तिकं तद् उपसर्जनसंज्ञं स्याद् न तु तस्य पूर्वनिपातः।**

समास विग्रह में जिसमें नियत अर्थात् एक ही विभक्ति रहती है, उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है, किन्तु समास में उसका पूर्व प्रयोग नहीं होता है।

नियतविभक्ति का अभिप्राय—निश्चित विभक्ति वाला या यह कह सकते हैं कि जिसकी विभक्ति में विग्रह करने पर भी किसी प्रकार का बदलाव न होता हो।

विग्रह में माला पद द्वितीयान्त है, अतः उसमें बदलाव नहीं होगा। अतः 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' से 'माला' पद की उपसर्जन संज्ञा किन्तु उसका पूर्व प्रयोग नहीं होगा। इस स्थिति में—

**९५२. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८।।**

**उपसर्जनं यो गोशब्दः, स्त्रीप्रत्ययान्तञ्च, तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्। अतिमालः।**

जिस प्रातिपदिक के अन्त में उपसर्जन संज्ञक 'गो' शब्द और स्त्रीप्रत्यान्त शब्द हो उस प्रातिपदिक के अन्तिम स्वर को ह्रस्व हो जाता है।

अतिमाला में उपसर्जन संज्ञक 'माला' पद स्त्रीप्रत्ययान्त है। अतः 'गोस्त्रियो-रुपसर्जनस्य' से 'माला' के अन्तिम स्वर 'आ' को ह्रस्व 'अ' आदेश–अतिमाल। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'अतिमालः' सिद्ध हुआ।

**नोट**—इसी प्रकार 'गो' का 'गु' ह्रस्व आदेश के कारण ही होगा।

**(वार्तिक) अवाऽऽदयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया। अवक्रुष्टः कोकिलया, अवकोकिलः।**

'अव' आदि का क्रुष्ट (कूजित) आदि अर्थ में तृतीयान्त सुबन्त पद के साथ समास होता है।

**अवकोकिलः** (कोयल से कूजित)

'अवक्रुष्टः कोकिलया' लौकिक विग्रह, 'अव कोकिल टा' अलौकिक विग्रह में 'अवाऽऽदयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया' वार्तिक से क्रुष्ट अर्थ में 'अव' का तृतीयान्त पद 'कोकिला टा' के साथ प्रादि तत्पुरुष समास हुआ, यहाँ 'अवाऽऽदयः' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'अव' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'अव' का पूर्व प्रयोग-अव कोकिला टा। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'टा' का लोप-अव कोकिला। 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' से 'कोकिला' पद की उपसर्जन संज्ञा किन्तु उसका पूर्व प्रयोग नहीं होगा। 'अव कोकिला' में उपसर्जन संज्ञक 'कोकिला' पद स्त्रीप्रत्ययान्त है। अतः 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से 'कोकिला' के अन्तिम स्वर 'आ' को ह्रस्व 'अ' आदेश-अवकोकिल। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'अवकोकिलः' सिद्ध हुआ।

**(वार्तिक) पर्यादयो ग्लानाऽऽद्यर्थे चतुर्थ्या। परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः।**

'परि' आदि का ग्लानि आदि अर्थ में चतुर्थ्यन्त वाले पद के साथ समास होता है।

**पर्यध्ययनः** (अध्ययन के लिए खिन्न)।

परिग्लानः अध्ययाय लौकिक विग्रह, परि अध्ययन ङे अलौकिक विग्रह में 'पर्यादयो ग्लानाऽऽद्यर्थे चतुर्थ्या' वार्तिक से ग्लानि अर्थ में 'परि' का चतुर्थ्यन्त सुबन्त 'अध्ययन ङे' के साथ 'प्रादि' तत्पुरुष समास हुआ, यहाँ 'पर्यादयो' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'परि' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'परि' का पूर्व प्रयोग-परि अध्ययन ङे। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङे' का लोप-परि अध्ययन। 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' से 'अध्ययन' पद की उपसर्जन संज्ञा किन्तु उसका पूर्व प्रयोग नहीं होगा। 'इकोयणचि' से 'इ' को 'य्' आदेश-पर्यध्ययन। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर पर्यध्ययनः सिद्ध हुआ।

**(वार्तिक) निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बि।**

'निर्' आदि का क्रान्त (निकाला गया) आदि अर्थ में पञ्चम्यन्त वाले पद के साथ समास होता है।

**निष्कौशाम्बिः** (कौशाम्बी से निकाला गया)।

'निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः' लौकिक विग्रह, 'निर् कौशाम्बी ङसि' अलौकिक विग्रह में 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या ' वार्तिक से क्रान्त अर्थ में 'निर्' का पञ्चम्यन्त सुबन्त 'कौशाम्बी ङसि' के साथ 'प्रादि' तत्पुरुष समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङसि' का लोप-निर् कौशाम्बी। 'एकविभक्ति चाऽपूर्वनिपाते' से 'कौशाम्बी' पद की उपसर्जन संज्ञा किन्तु उसका पूर्व प्रयोग नहीं होगा। 'निर्' के 'र्' को 'स्' और फिर 'स्' को 'ष्' आदेश-निष्कौशाम्बी। निष्कौशाम्बी में उपसर्जन संज्ञक 'कौशाम्बी' पद स्त्रीप्रत्ययान्त है। अतः 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से कौशाम्बी के अन्तिम स्वर 'ई' को ह्रस्व 'इ'

आदेश-निष्कौशाम्बि। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय करने पर फिर सु का रुत्व विसर्ग होकर निष्कौशाम्बिः सिद्ध हुआ।

**९५३. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३।१।९२।।**

**सप्तम्यन्ते पदे 'कर्मणि' इत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भादि तद्वाचकं पदम् उपपदसंज्ञं स्यात्।**

सप्तम्यन्त पद कर्मणि आदि में वाच्य रूप से स्थित जो 'कुम्भ' आदि है उसके वाचक पद की 'उपपद' संज्ञा होती है।

'कर्मण्यम्' (७९०) में कर्मणि सप्तमी विभक्ति का पद है और वह 'कुम्भ' आदि में वाच्य रूप से स्थित है इसलिए उसके (कर्म के) अर्थ के वाचक पद 'कुम्भ' की उपपदसंज्ञा होगी। जैसे–कुम्भं करोति इति कुम्भकारः में 'कृ' धातु का कर्म 'कुम्भ' उपपद रहते 'कृ' धातु से 'अण्' प्रत्यय लगकर 'कुम्भकारः' बनता है।

**९५४. उपपदमतिङ् २।२।१९।।**

**उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते। अतिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। अतिङ् किम्-मा भवान् भूत्, माङि लुङ् इति सप्तमीनिर्देशान्माङ् उपपदम्।**

उपपद सुबन्त का समर्थ पद के साथ नित्य समास होता है। यह समास तिङन्त के साथ नहीं होता है। अभिप्राय यह है कि उपपद का तिङन्त भिन्न समर्थ पद के साथ नित्य समास होता है।

जैसे–कुम्भकार में कुम्भ और कार दो पद हैं यहाँ 'कुम्भ' कर्म रूप से उपपद है और 'कार' तिङन्त (क्रिया) का रूप नहीं है बल्कि कृदन्त का रूप है, अतः इन दोनों में नित्य समास होगा।

**कुम्भकारः** (घड़ा बनाने वाला-कुम्हार)

'कुम्भं करोति' लौकिक विग्रह, 'कुम्भ अम् कार' अलौकिक विग्रह में ('कृ' धातु से 'अण्' = कृ + अण्, 'अण्' के 'ण्' का लोप = कृ + अ, 'अचो ञ्णिति' से 'ऋ' को वृद्धि 'आर्' होकर 'कार' बनता है।) 'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' सूत्र से 'कुम्भ' पद की उपपद संज्ञा। 'उपपदमतिङ्' से उपपद 'कुम्भ अम्' का कृदन्त 'कार' के साथ समास हुआ-कुम्भ अम् कार सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'अम्' का लोप-कुम्भकार। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'कुम्भकारः' सिद्ध हुआ।

**नोट**–'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' वार्तिक से 'सुप्' विभक्ति आने से पहले ही समास जाया करता है।

सूत्र में अतिङन्तं पद का अभिप्राय है–तिङन्त भिन्न अर्थात् उपपद का तिङन्त भिन्न समर्थ पद के साथ समास होता है। जैसे–'मा भवान् भूत' में 'माङ्' उपपद है क्योंकि 'माङि लुङ्' में 'माङि' सप्तम्यन्त पद है 'मा' उपपद रहते 'भूत' के साथ समास होना चाहिए किन्तु यहाँ तिङन्त पद है, अतः उपपद का तिङन्त पद के साथ समास नहीं होगा।

**(वार्तिक) गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः। व्याघ्री, अश्वक्रीती, कच्छपीत्यादि।**

गति, कारक और उपपद का कृदन्त के साथ सुप् आने से पहले ही समास हो जाता है।

गति का कृदन्त के साथ समास का उदाहरण

**'व्याघ्री', (बाघिन)** 'व्याजिघ्रति' (विशेष रूप से चारों ओर सूँघती है) लौकिक विग्रह, 'वि आङ् घ्रा क' अलौकिक विग्रह में ('आतश्चोपसर्गे' से घ्रा धातु से क (अ) प्रत्यय, क् का लोप अ शेष-वि आ घ्रा अ। कित् होने से 'आतो लोप इटि च' से घ्रा के आ का लोप-वि आ घ्र् अ। 'इकोयणचि' सूत्र से इ का य् आदेश-वि आघ्र = व्याघ्र) यहाँ 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' वार्तिक से 'सुप' आने से पहले ही व्याघ्र समास हुआ। 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ङीष्' प्रत्यय-व्याघ्र ङीष्। 'ङीष्' के 'ङ्' और 'ष्' का लोप, ई शेष-व्याघ्र ई। 'यचिभम' से भ संज्ञा। 'यस्येति च' से 'व्याघ्र' के 'अ' का लोप-व्याघ्र् ई = व्याघ्री। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-व्याघ्री सु। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से 'सु' का लोप होकर 'व्याघ्री' सिद्ध हुआ।

कारक का कृदन्त के साथ समास का उदाहरण—

**अश्वक्रीती** (घोड़े के द्वारा खरीदी गयी)

'अश्वेन क्रीता' लौकिक विग्रह, 'अश्व टा क्रीत' अलौकिक विग्रह में 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' से तृतीयान्त 'अश्व टा' का कृदन्त 'क्रीत' के साथ तृतीया तत्पुरुष समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'टा' का लोप-अश्वक्रीत। यहाँ 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' वार्तिक से सुप् आने से पहले ही **'अश्वक्रीत'** समास हुआ। 'क्रीतात् करणपूर्वात्' से 'ङीष्' प्रत्यय, 'ङीष्' के 'ङ्' और 'ष्' का लोप, 'ई' शेष-अश्वक्रीत ई। 'यचिभम' से भ संज्ञा। 'यस्येति च' से 'अश्वक्रीत' के 'अ' का लोप-अश्वक्रीत् ई = अश्वक्रीती। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-अश्वक्रीती सु। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से 'सु' का लोप होकर 'अश्वक्रीती' सिद्ध हुआ।

उपपद समास का उदाहरण—

**'कच्छपी'** (कछुवी) 'कच्छेन पिबति' लौकिक विग्रह, 'कच्छ टा पा' अलौकिक विग्रह में ('सुपि स्थः' सूत्र से कच्छ उपपद रहते पा धातु से क प्रत्यय-कच्छ + पा + क। क के क् की इत्संज्ञा तथा लोप-कच्छ + पा + अ। कच्छप कित् होने से 'आतो लोप इटि च' से पा के आ का लोप-कच्छ + प् + अ-कच्छप।) 'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' से 'कच्छ' की उपपद संज्ञा। 'उपपदमतिङ्' से 'कच्छ टा' का 'अतिङन्त' के साथ उपपद तत्पुरुष समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'टा' का लोप। यहाँ 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' वार्तिक से 'सुप्' आने से पहले ही कच्छप समास हुआ। 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' से स्त्रीत्व विवक्षा में 'ङीष' प्रत्यय, 'ङीष' के

'ङ्' और 'ष' का लोप, ई शेष- कच्छप ई। 'यचिभम' से भ संज्ञा। 'यस्येति च' से 'कच्छप' कै 'अ' का लोप-कच्छप् ई = कच्छपी। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-कच्छपी सु। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से 'सु' का लोप होकर 'कच्छपी' सिद्ध हुआ।

**९५५. तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याऽव्ययादेः ५।४।८६।।**

**संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात्। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलम्। निर्गतमङ्गुलिभ्यः निरङ्गुलम्।**

जिस तत्पुरुष समास के आदि में संख्यावाचक या अव्यय पद हो, और अन्त में 'अङ्गुलि' शब्द हो तो उस समासान्त से 'अच्' प्रत्यय होता है। 'अच्' का 'अ' शेष रहता है।

**द्व्यङ्गुलम्** (दो अङ्गुल लम्बा)

'द्वे अङ्गुली प्रमाणस्य' लौकिक विग्रह, 'द्वे अङ्गुलि औ मात्रच्' अलौकिक विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' से प्रमाण अर्थ में संख्यावाचक सुबन्त 'द्वि' का 'अङ्गुलि औ' के साथ द्विगु समास हुआ। 'द्विगोर्लुङ्गुनपत्ये' से 'मात्रच्' का लोप-द्वे अङ्गुलि औ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'औ' का लोप- द्वे अङ्गुलि। 'तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याऽव्ययादेः' से समासान्त 'अच्' प्रत्यय-द्वे अङ्गुलि अच्। 'अच्' के 'च्' का लोप-द्वे अङ्गुलि अ। 'यस्येति च' से अङ्गुलि के 'ई' का लोप। 'एचोऽयवायावः' से 'ए' को 'अय्' होकर द्व्यङ्गुल बना। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर द्व्यङ्गुल सु। नपुंसकलिंग में 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्' आदेश-द्व्यङ्गुल अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप आदेश होकर 'द्व्यङ्गुलम्' सिद्ध हुआ।

**निरङ्गुलम्** (अङ्गुलियों से निकला हुआ)

'निर्गतम् अङ्गुलिभ्यः' लौकिक विग्रह, निर् अङ्गुलि भ्यस् अलौकिक विग्रह में 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पंचम्याः' से निर्गत अर्थ में 'निर्' अव्यय का 'अङ्गुलि' के साथ प्रादि तत्पुरुष समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'भ्यस्' का लोप-निर् अङ्गुलि। 'तत्पुरुषयाङ्गुलेः संख्याऽव्ययादेः' से समासान्त 'अच्' प्रत्यय, 'अच्' के 'च्' का लोप-निर् अङ्गुलि अ। 'यस्येति च' से अङ्गुलि के 'ई' का लोप-निर् अङ्गुल्। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-निरङ्गुल सु। नपुंसकलिंग में 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्' आदेश-निरङ्गुल अम्। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप आदेश होकर 'निरङ्गुलम्' सिद्ध हुआ।

**९५६. अहः सर्वैकदेश-संख्यात-पुण्याच्च रात्रेः ५।४।८७।।**

**एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात्संख्याव्ययादेः। अर्हग्रहणं द्वन्द्वार्थम्।**

अहः, सर्व, एकदेश, संख्यात, पुण्य के बाद रात्रि शब्द आने पर समासान्त अच् प्रत्यय होता है। यहाँ संख्यावाचक और अव्ययपद के बाद भी 'रात्रि' शब्द से समासान्त 'अच्' प्रत्यय ग्रहण हो।

तात्पर्य यह है कि इनमें से द्वन्द्वसमास में 'अहः' के बाद और तत्पुरुष समास में सर्व, एकदेश, संख्यात और पुण्य के बाद 'रात्रि' शब्द से समासान्त 'अच्' प्रत्यय होता है।

**९५७. रात्राऽह्नाहाः पुंसि २।४।२९।।**

**एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव। अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रः। सर्वरात्रः। संख्यातरात्रः।**

यदि द्वन्द्वऔर तत्पुरुष के अन्त में रात्र, अहन् और अह शब्द हों तो वे पुल्लिग में ही होते हैं।

**अहोरात्रः** (दिन और रात)

'अहश्च रात्रिश्च' लौकिक विग्रह, 'अहन् सु रात्रि सु' अलौकिक विग्रह में 'अहन्' के बाद 'रात्रि' शब्द आने पर द्वन्द्व समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' का लोप-अहन् रात्रि। 'अहः सर्वैकदेश-संख्यात-पुण्याच्च रात्रेः' से समासान्त 'अच्' प्रत्यय, 'अच्' के 'च्' का अनुबन्ध लोप-अहन् रात्रि अ। 'यस्येति च' से रात्रि के 'इ' का लोप-अहन् रात्र् अ। 'अहन्' (३६३) से 'न्' को 'रु'-अहरु रात्र। 'हशि च' से 'रु' को 'उ'-अह उ रात्र। 'आद्गुणः' से उ को आ-अहोरात्र। 'स नपुसंकम्' से नपुंसकलिंग प्राप्त हुआ किन्तु 'रात्राऽह्नाहाः पुंसि' से पुल्लिंग। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'अहोरात्रः' सिद्ध हुआ।

**सर्वरात्रः** (सारी रात)

'सर्वाः रात्र्यः' लौकिक विग्रह, 'सर्वा जस् रात्रि जस्' अलौकिक विग्रह में 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः' से 'सर्वा जस्' का 'रात्रि जस्' के साथ कर्मधारय समास हुआ। कर्मधारय समास होने कारण सर्वा को पुंवद्भाव (पुल्लिंग) हुआ-सर्व जस् रात्रि जस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'जस्' का लोप-सर्व रात्रि। 'अहः सर्वैकदेश-संख्यात-पुण्याच्च रात्रेः' से समासान्त 'अच्' प्रत्यय, 'अच्' के 'च्' का अनुबन्ध लोप-सर्वरात्रि अ। 'यस्येति च' से रात्रि के 'इ' का लोप-सर्वरात्र् अ। 'रात्राऽह्नाहाः पुंसि' से पुल्लिंग-सर्वरात्र् अ। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'सर्वरात्रः' सिद्ध हुआ।

**संख्यातरात्रः** (गिनी हुई रातें)

संख्याता रात्र्यः लौकिक विग्रह, संख्याता जस् रात्रि जस् अलौकिक विग्रह में 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः' से 'संख्याता जस्' का 'रात्रि जस्' कै साथ कर्मधारय समास हुआ। कर्मधारय समास होने कारण संख्याता को पुंवद्भाव (पुल्लिंग) हुआ-संख्यात जस् रात्रि जस्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् जस् का लोप-संख्यातरात्रि। 'अहः सर्वैकदेश-संख्यात-पुण्याच्च रात्रेः' से समासान्त अच् प्रत्यय, अच् के च् का अनुबन्ध लोप-संख्यातरात्रि अ। 'यस्येति च' से रात्रि के इ का लोप-संख्यातरात्र् अ। 'रात्राऽह्नाहाः पुंसि' से पुल्लिंग। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय करने पर फिर सु का रुत्व विसर्ग होकर संख्यातरात्रः सिद्ध हुआ।

**(वार्तिक) संख्यापूर्व रात्रं क्लीबम्। द्विरात्रम्, त्रिरात्रम्।**

संख्यावाचक शब्द पूर्व में होने पर रात्र शब्द नपुंसकलिंग होता है।

**द्विरात्रम्** (दो रात्रियों का समाहार)

'द्वयोः रात्र्योः समाहारः' लौकिक विग्रह, 'द्विओस् रात्रि ओस्' अलौकिक विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे' सूत्र से समाहार अर्थ में संख्यावाचक 'द्वि ओस्' का 'रात्रि ओस्' के साथ द्विगु तत्पुरुष समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ओस्' का लोप-द्वि रात्रि। 'अहः सर्वैकदेश-संख्यात-पुण्याच्च रात्रेः' से समासान्त 'अच्' प्रत्यय, 'अच्' के 'च्' का अनुबन्ध लोप-द्विरात्रि अ। 'यस्येति च' से रात्रि के 'इ' का लोप-द्विरात्र् अ। 'रात्राऽह्नाहाः पुंसि' से पुल्लिंग प्राप्त था किन्तु 'संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्' वार्तिक से नपुंसकलिंग हुआ। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-द्विरात्र सु। नपुंसकलिंग में 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्' आदेश- द्विरात्र अम्। फिर 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'द्विरात्रम्' सिद्ध हुआ।

**नोट**—'त्रिरात्रम्' भी 'द्विरात्रम्' की तरह ही सिद्ध होगा।

**९५८. राजाऽहः सखिभ्यष्टच् ५।४।९१।।**

**एतदन्तात् तत्परुषात् टच् स्यात्। परमराजः।**

जिस तत्पुरुष समास के अन्त में राजन्, अहन् और सखि शब्द हो तो उस समासान्त से टच् (अ) प्रत्यय होता है।टच् प्रत्यय टित् होने से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होगा।

'**परमराजः**' (श्रेष्ठ राजा) 'परम च असौ राजा च' लौकिक विग्रह, 'परम सु' राजन् सु अलौकिक विग्रह में 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' से 'परम सु' का 'राजन् सु' के साथ कर्मधारय समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' का लोप-परम राजन्। 'राजाऽहः सखिभ्यटच्' से समासान्त 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के 'ट्' और 'च्' का अनुबन्ध लोप, 'अ' शेष परम राजन् अ 'यचिभम' से भसंज्ञा। 'नस्तद्धिते' से राजन् के टि 'अन्' का लोप-परमराज। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'परमराजः' सिद्ध हुआ।

**९५९. आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ६।३।४६।।**

**महत अकारोऽन्तादेशः स्यात् समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे। महाराजः। प्रकारवचने जातीयर्। महाप्रकारो-महाजातीयः।**

समानाधिकरण (समान विभक्ति वाले) उत्तरपद और जातीयर् प्रत्यय परे हो तो महत् शब्द को आत् (आ) आदेश होता है। यह 'आदेश अलोऽन्त्यस्य' सूत्र से अन्तिम अल् अर्थात् महत् के 'त्' के स्थान पर होगा।

**महाराजः** (बड़ा राजा)

'महान् च असौ राजा' लौकिक विग्रह, 'महत् सु राजन् सु' अलौकिक विग्रह में 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' से 'महत् सु' का 'राजन् सु' के साथ कर्मधारय समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक

संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' का लोप-महत् राजन्। 'राजाऽहः सखिभ्यटच्' से समासान्त 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के 'ट्' और 'च्' का अनुबन्ध लोप, 'अ' शेष-महत् राजन् अ। 'यचिभम' से भसंज्ञा। 'नस्तद्धिते' से राजन् के टि 'अन्' का लोप-महत् राज् अ। 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' सूत्र से महत् को 'आत्' (आ) आदेश तथा 'अलोऽन्त्यस्य' से अन्तिम अल् 'त्' के स्थान पर 'आ' आदेश-मह आ राज। 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीघ-महाराज। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'महाराजः' सिद्ध हुआ।

'महाजातीयः' शब्द में महत् + जातीयर् प्रत्यय होने पर भी महत् कै 'त्' को आत् (आ) आदेश होकर 'महाजातीयः' रूप बनता है।

**९६०. द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ६।३।४७।।**

**आत्स्यात्। द्वौ च दश-द्वादश। अष्टाविंशतिः।**

बहुव्रीहि समास न हो तथा अशीति शब्द बाद में न हो तो संख्यावाचक 'द्वि' और 'अष्टन्' के स्थान पर 'आत्' (आ) अन्तादेश होता है। यह आदेश 'अलोऽन्त्यस्य' से अन्तिम अल् के स्थान पर अर्थात् 'द्वि' के 'इ' तथा अष्टन् के अन्त्य नकार के स्थान पर होगा।

**द्वादश** (बारह)

'द्वौ च दश च' लौकिक विग्रह, 'द्वि औ दशन् जस्' अलौकिक विग्रह में 'द्वि औ का 'दशन् जस्' के साथ द्वन्द्व समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'औ,' 'जस्' का लोप-द्वि दशन्। 'द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः' सूत्र से 'द्वि' को 'आत्' (आ), 'अलोऽन्त्यस्य' से 'इ' के स्थान पर-द्व् आ दशन्। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से 'न' का लोप-द्वादश। प्रथमा एकवचन में 'सु' विभक्ति लाने पर-द्वादश सु। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से 'सु' का लोप होकर 'द्वादश' सिद्ध हुआ।

**९६१. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २।४।२६।।**

**एतयो परपदस्येव लिङ्गं स्यात्। कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। अर्धपिप्पली।**

समाहार भिन्न द्वन्द्व और तत्पुरुष में समस्त पद का लिंग पर (बाद वाले) पद के समान होता है।

नोट-यहाँ द्वन्द्व से आशय समाहार द्वन्द्व भिन्न, द्वन्द्व समास समझना चाहिए, क्योंकि समाहार द्वन्द्व का समस्त पद नपुंसकलिंग में होता है। तात्पर्य यह है कि जो लिंग उत्तरपद या बाद वाले पद का होगा वही लिंग समस्त पद का भी हो जायेगा।

**कुक्कुटमयूर्यौ** (मुर्गा और मोरनी)

'कुक्कुटश्च मयूरीश्च' लौकिक विग्रह, 'कुक्कुट सु मयूरी सु' अलौकिक विग्रह में 'कुक्कुट सु' का 'मयूरी सु' के साथ द्वन्द्वसमास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् सु का लोप-कुक्कुट मयूरी। यहाँ उत्तरपद 'मयूरी' स्त्रीलिंग है, अतः 'परवल्लिङ्गं

द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से समस्त पद स्त्रीलिंग हुआ। प्रथमा द्विवचन में 'औ' प्रत्यय करने पर-कुक्कुटमयूरी औ। शेष विभक्ति आदि कार्य होकर कुक्कुटमयूर्यौ सिद्ध हुआ।

इसीप्रकार 'मयूरीकुक्कुटौ' (मोरनी और मुर्गा)'मयूरी च कुक्कुटश्च'-लौकिक विग्रह, 'मयूरी सु कुक्कुट सु' अलौकिक विग्रह में द्वन्द्व समास होकर 'मयूरीकुक्कुट' बनता है। यहाँ उत्तरपद 'कुक्कुट' पुल्लिंग है, अतः 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से समस्त पद पुल्लिंग हुआ तथा प्रथमा द्विवचन में 'मयूरीकुक्कुटौ' रूप बनता है।

**(वार्तिक) द्विगु-प्राप्ताऽऽपन्नालंपूर्व-गतिसमासेषु-प्रतिषेधो वाच्यः। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः पुरोडाशः।**

द्विगु समास, प्राप्त, आपन्न और अलंपूर्वक समास तथा गति समास में उत्तरपद के लिंग का निषेध समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि इन स्थानों पर उत्तरपद के लिंग के समान समस्त पद का लिंग न होकर पूर्वपद के लिंग के समान होता है।

**पञ्चकपालः** (पाँच कपालों में पकाया गया-पुरोडाश)

'पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः' लौकिक विग्रह , 'पञ्चन् सुप् कपाल सुप्' अलौकिक विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से 'पञ्च सुप्' का 'कपाल सुप्' के साथ द्विगु समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-पञ्चकपाल। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से नपुंसकलिंग हुआ किन्तु 'द्विगुप्राप्ताऽऽपन्ना- लंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः' से निषेध हुआ तथा अपने विशेष्य 'पुरोडाशः' के समान पुल्लिंग हुआ। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-पञ्चकपाल सु। फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'पञ्चकपालः' सिद्ध हुआ।

**९६२. प्राप्ताऽऽपन्ने च द्वितीयया २।२।४।।**

**समस्येते। अकारश्चानयोरन्तादेशः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः। आपन्नजीविकः। अलं कुमार्यै अलंकुमारिः। अतएव ज्ञापकात्समासः। निष्कौशाम्बिः।**

प्राप्त और आपन्न सुबन्त पदों का द्वितीयान्त सुबन्त पद के साथ तत्पुरुष समास होता है, और इनको अ अन्तादेश होता है।

**प्राप्तजीविकः** (जिसे जीविका मिल गई है)

'प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः' लौकिक विग्रह, 'प्राप्त सु जीविका अम्' अलौकिक विग्रह में 'प्राप्ताऽऽपन्ने च द्वितीयया' से 'प्राप्त सु' का द्वितीयान्त 'जीविका अम्' के तत्पुरुष समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' और 'अम्' का लोप-प्राप्तजीविका। 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' से 'जीविका' की उपसर्जन संज्ञा किन्तु उसका पूर्व प्रयोग नहीं। उपसर्जन संज्ञक 'जीविका' पद स्त्रीप्रत्ययान्त है।अतः 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से 'जीविका' के अन्तिम स्वर 'आ' को ह्रस्व 'अ'-प्राप्तजीविक। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से समस्त पद स्त्रीलिंग होगा किन्तु 'द्विगुप्राप्ताऽऽपन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः' से निषेध हुआ तथा अपने विशेष्य के समान पुल्लिंग हुआ। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-प्राप्तजीविक सु। फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर प्राप्तजीविकः सिद्ध हुआ।

**आपन्नजीविकः** (जीविका को प्राप्त)

'आपन्न जीविकाम्' लौकिक विग्रह, 'आपन्न सु जीविका अम्' अलौकिक विग्रह में शेष सभी कार्य 'प्राप्तजीविकः' की तरह होकर '**आपन्नजीविकः**' सिद्ध होगा।

**अलंकुमारिः** (कुमारी के योग्य)

'अलं कुमार्यै' लौकिक विग्रह, 'अलम् कुमारी ङे' अलौकिक विग्रह में 'द्विगुप्राप्ताऽऽ-पन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः' से समास में परवत् लिंग का निषेध करता है, किन्तु 'अलं' के साथ इसी सूत्र से समास समझना चाहिए। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् 'ङे' का लोप-अलंकुमारी। 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' से 'कुमारी' की उपसर्जन संज्ञा किन्तु उसका पूर्व प्रयोग नहीं होगा। यहाँ उपसर्जन संज्ञक 'कुमारी' पद स्त्रीप्रत्ययान्त है। अतः 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से 'कुमारी' के अन्तिम स्वर 'ई' को ह्रस्व 'इ'-अलंकुमारि। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से समस्त पद स्त्रीलिंग होगा किन्तु 'द्विगुप्राप्ताऽऽपन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः' से निषेध हुआ तथा अपने विशेष्य के समान पुल्लिंग हुआ। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-'अलंकुमारि सु'। फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर अलंकुमारिः सिद्ध हुआ।

'निष्कौशाम्बिः' में प्रादि समास तथा परवत् लिंग 'कौशाम्बी' के आधार स्त्रीलिंग होना चाहिए किन्तु 'द्विगुप्राप्ताऽऽपन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः' से निषेध तथा अपने विशेष्य के समान पुल्लिंग में 'निष्कौशाम्बिः' रूप सिद्ध हुआ है।

**९६३. अर्धर्चाः पुंसि च २।४।३१।।**

**अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः। अर्धर्चः, अर्धर्चम्। एवं ध्वज-तीर्थ-शरीर-मण्डप-यूप-देहाङ्कुशपात्र-सूत्रादयः। सामान्ये नपुसंकम्। मृदु पचति। प्रातः कमनीयम्।**

इस सूत्र के अर्थ कै लिए 'अपथं नपुंसकम्' (२।४।३०) से नपुंसकम् की अनुवृत्ति कर लेने पर, तब अर्थ होगा-अर्धर्च आदि गण में पठित शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों में होते हैं। अर्धर्चादिगण के अन्तर्गत अर्धर्च, गोमय तथा कषाय आदि शब्द आते हैं।

**अर्धर्चः अर्धर्चम्** (आधी ऋचा)

'अर्धम् ऋचः' लौकिक विग्रह, 'अर्ध सु ऋच् ङस्' अलौकिक विग्रह में 'अर्धं नपुसंकम्' से 'अर्ध सु' का 'ऋच् ङस्' के साथ समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातु-प्रातिपदिकयोः' से सुप् 'सु' और 'ङस्' का लोप-अर्ध ऋच्। 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' से समासान्त 'अच्' प्रत्यय, 'अच्' के 'च्' का अनुबन्ध लोप-अर्ध ऋच् अ। 'आद्गुणः' से गुण तथा 'उरण् रपरः' से 'अर्' के रूप में आदेश-अर्ध् अर् च। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से समस्त पद स्त्रीलिंग होगा किन्तु 'अर्धर्चाः पुंसि च' से पुल्लिंग तथा प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय-अर्धर्च सु। फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर अर्धर्चः सिद्ध होगा।

किन्तु नपुंसकलिंग में 'सु' को 'अम्' आदेश और 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'अर्धर्चम्' सिद्ध होगा।

इसी प्रकार ध्वज, तीर्थ, शरीर, मण्डप, यूप, देह, अङ्कुश, पात्र, सूत्र आदि शब्द दोनों लिंग में होते हैं।

जहाँ विशेष लिंग का पता नहीं चलता है वहाँ सामान्य कथन में नपुंसकलिंग ही होता है। जैसे—'मृदु पचति' (कोमलता से पकता है) में 'मृदु' क्रिया-विशेषण है सामान्य कथन से नपुंसकलिंग हुआ है। 'प्रातः कमनीयम्' (प्राप्तः काल सुन्दर है), 'कमनीयम्' में सामान्य कथन से ही नपुंसकलिंग होगा।

इति तत्पुरुष समास

## ४. बहुव्रीहि समास

जिस समास में आये हुए दोनों या अधिक पद मिलकर किसी अन्य अर्थात् तीसरे कै विशेषण के रूप में हुआ करते हैं तो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। बहुव्रीहि और तत्पुरुष में अन्तर यह है कि तत्पुरुष में प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण बनता है। जैसे—'पीतम् अम्बरम्' = पीताम्बरम् (पीला वस्त्र)–कर्मधारय तत्पुरुष समास। लेकिन बहुव्रीहि में दोनों या अधिक पद मिलकर तीसरे शब्द के विशेषण बनते हैं। जैसे—'पीताम्बरः' = 'पीतम् अम्बरं यस्य सः'–अर्थात् पीला है वस्त्र जिसका वह अर्थात् श्रीकृष्ण।

**नोट**—आवश्यकतानुसार एक ही समास तत्पुरुष या बहुव्रीहि समास हो सकता है।

**९६४. शेषो बहुव्रीहिः २।२।२३।।**

**अधिकरोऽयं प्राग् द्वन्द्वात्।**

अव्ययीभाव और तत्पुरुष भिन्न समास को बहुव्रीहि समास कहते हैं।

यह अधिकार सूत्र है 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) से पहले तक बहुव्रीहि समास का अधिकार है। यहाँ शेष शब्द का तात्पर्य है—बचा हुआ अर्थात् अव्ययीभाव और तत्पुरुष भिन्न समास।

**९६५. अनेकमन्यपदार्थे २।२।२४।।**

**अनेकं प्रथमान्तम् अन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः।**

अनेक प्रथमान्त पदों का अन्य पद के अर्थ में वर्तमान सुबन्त पद के साथ विकल्प से समास होता है, और वह बहुव्रीहि समास कहलाता है। यहाँ प्रथमान्त का आशय है प्रथमा विभक्ति से अन्त होने वाले अर्थात् समानाधिकरण तथा अन्यपद के अर्थ में वर्तमान का समस्त पदों से भिन्न अर्थ में अर्थात् जिनका समास किया जाता है उनसे भिन्न किसी तीसरे अर्थ में विद्यमान का विकल्प से समास होता है। ये समस्त पद किसी तीसरे के विशेषण के रूप में होते हैं।

जैसे—'पीताम्बरः' में पीत (पीला) और अम्बर (वस्त्र) दो पद हैं और ये दोनों पद कृष्ण के अर्थ में वर्तमान हैं जो पीताम्बर, समस्त पद से भिन्न भी है अतः यह बहुव्रीहि है।

**९६६. सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २।२।३५।।**

**सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः।**

बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त (सप्तमी विभक्ति से अन्त होने वाले) और विशेषण पद का पहले प्रयोग होता है। अतः स्पष्ट है कि व्यधिकरण (भिन्न-भिन्न विभक्ति वाले) पदों का भी बहुव्रीहि समास होता है।

**नोट**—बहुव्रीहि के भी दो भेद हैं—

१. समानाधिकरण अर्थात् वह बहुव्रीहि समास जिसके दोनों पदों का एक ही अधिकरण (विभक्ति) हों या वे प्रथमान्त हों। जैसे—'पीताम्बरः' में 'पीतम्' और 'अम्बरम्' दोनों ही प्रथमान्त पद हैं, अतः उपसर्जन संज्ञा और उसका पूर्व प्रयोग होना चाहिए किन्तु 'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ' से बाध होकर विशेषण 'पीतम्' का ही पहले प्रयोग होगा।

२. व्यधिकरण अर्थात् वह बहुव्रीहि समास जिसकै दोनों पद प्रथमान्त न होकर कैवल एक प्रथमान्त हो, दूसरा षष्ठी या सप्तमी विभक्ति वाला पद हो। जैसे—'चन्द्रशेखरः'—'चन्द्रः शेखरे यस्य सः'—शिव।

बहुव्रीहि समास का विग्रह करते समय विग्रह में यत् शब्द के किसी रूप का प्रयोग आवश्यक होता है, क्योंकि इसी से पता चलता है कि समास में प्रयुक्त शब्द किसी अन्य शब्द से सम्बन्ध रखते हैं। अतः समस्त पद एक विशेषण की तरह प्रयुक्त होता है।

**९६७. हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम् ६।३।९।।**

**हलन्ताद् अदन्ताद् सप्तम्या अलुक्। कण्ठेकालः प्राप्तमुदकं यं प्राप्तोदको ग्रामः। ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतपशू रुद्रः। उद्धृतौदना स्थाली। पीताम्बरो स्थाली।वीरपुरुषको ग्रामः।**

हलन्त (जिसके अन्त में कोई व्यञ्जनवर्ण हो) अदन्त (अकारान्त) पदों के बाद सप्तमी विभक्ति का संज्ञा अर्थ में लोप नहीं होता है।

**कण्ठेकालः** (जिसके कण्ठ में काला चिह्न हो अर्थात् शिव)

'कण्ठे कालः यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'कण्ठ ङि काल सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से सप्तम्यन्त 'कण्ठ ङि' का 'काल सु' के साथ व्यधिकरण बहुव्रहि समास हुआ। 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से 'कण्ठ ङि' का पूर्व प्रयोग होगा-कण्ठ ङि काल सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ किन्तु 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' से अकारान्त कण्ठ से परे सप्तमी विभक्ति प्रत्यय ङि के लोप का निषेध, केवल 'सु' का लोप होगा-कण्ठ 'ङि' काल। 'ङि' का विभक्ति कार्य होकर-कण्ठेकाल। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'कण्ठेकालः' सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार सरसिजम् (कमल) 'सरस् ङि जन्' धातु में 'सप्तम्यां जनेर्डः' (८११) से 'ड' प्रत्यय करने पर 'सरसिजम्' रूप बनता है। यहाँ हलन्त 'सरस्' के बाद सप्तमी विभक्ति प्रत्यय 'ङि' का लोप नहीं हुआ है।

**प्राप्तोदकः ग्रामः**(जहाँ जल पहुँच गया हो ऐसा ग्राम)

'प्राप्तम् उदकं यं सः' लौकिक विग्रह, 'प्राप्त सु उदक सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से द्वितीया के अर्थ में 'प्राप्त सु' का 'उदक सु' के साथ व्यधिकरण बहुव्रीहि समास हुआ। 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' से विशेषण 'प्राप्त सु' का पूर्व प्रयोग-प्राप्त सु उदक सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ-प्राप्त उदक। 'आद्गुणः' से अ + उ = ओ गुण एकादेश-प्राप्तोदक। प्रथमा एकवचन में अपने विशेष्य 'ग्रामः' के अनुसार पुल्लिग में 'सु' प्रत्यय फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'प्राप्तोदकः' सिद्ध होगा।

**ऊढरथः अनड्वान्** (जिसने रथ खींचा हो ऐसा बैल)

'ऊढः रथः येन सः' लौकिक विग्रह, 'ऊढ सु रथ सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' से 'ऊढ सु' का पूर्व प्रयोग, प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुप्' का लोप तथा प्रथमा एकवचन में अपने विशेष्य के अनुसार पुल्लिंग में 'ऊढरथः' सिद्ध होगा।

**उपहृतपशुः रुद्रः** (ऐसा रुद्र जिसे पशु की बलि दी गयी हो)

'उपहृतः पशुः यस्मै सः' लौकिक विग्रह, 'उपहृत सु पशु सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास, 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' से 'उपहृत सु' का पूर्व प्रयोग, प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुप्' का लोप तथा प्रथमा एकवचन में अपने विशेष्य 'रुद्रः' के अनुसार पुल्लिग में 'उपहृतपशुः' सिद्ध होगा।

**वीरपुरुषकः ग्रामः** (ऐसा ग्राम जिसमें वीर पुरुष रहते हैं)

'वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः' लौकिक विग्रह

'वीर जस् पुरुष जस्' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास, 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' से विशेषण 'वीर जस्' पूर्व प्रयोग, प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुप्' का लोप तथा प्रथमा एकवचन में अपने विशेष्य 'ग्रामः' के अनुसार पुल्लिंग में 'वीरपुरुषकः' सिद्ध होगा।

**पीताम्बरः हरिः** (पीले है वस्त्र जिसका-हरि)

'पीतम् अम्बरं यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'पीत सु अम्बर सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से 'पीत सु' का 'अम्बर सु' के साथ व्यधिकरण बहुव्रीहि समास हुआ। 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' से विशेषण 'पीत सु' का पूर्व प्रयाग-पीत सु अम्बर सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ-पीत अम्बर। 'अकः सवर्णे दीर्घ' से अ + अ = आ वृद्धि एकादेश-पीताम्बर। प्रथमा एकवचन में विशेष्य 'हरिः' के अनुसार पुल्लिंग में 'सु' प्रत्यय फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'पीताम्बरः' सिद्ध होगा।

**(वार्तिक) प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः। प्रपतितपर्णः प्रपर्णः।** जब 'प्र' आदि के बाद धातुज (धातु से बने हुए) पद का अन्य शब्द के साथ समास होता है तब उसके उत्तरपद का विकल्प से लोप हो जाता है।

अभिप्राय यह है कि यदि धातु से बने हुए पद के आरम्भ में प्र, परा आदि हों तो उसका अन्य पद के साथ समास होता है और उसके उत्तरपद का लोप होता है। जैसे—'प्रपतितपर्णः' में 'प्रपतित' का 'पर्ण' के साथ समास होकर 'प्रपतित' के उत्तरपद 'पतित' का विकल्प से लोप होकर प्रपर्णः बनेगा।

**प्रपर्णः** (जिसके पत्ते गिर गये हैं)

'प्रपतितानि पर्णानि यस्मात्' लौकिक विग्रह, 'प्रपतित जस् पर्ण जस्' अलौकिक विग्रह में 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' वार्तिक से 'प्रपतित जस्' का 'पर्ण जस्' के साथ बहुव्रीहि समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ–प्रपतित पर्ण। 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' वार्तिक से ही उत्तरपद 'पतित' का विकल्प से लोप–प्रपर्ण। प्रथमा एकवचन पुल्लिग में 'सु' प्रत्यय, फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'प्रपर्णः' सिद्ध होगा। यदि 'पतित' का लोप न हो तो 'प्रपतितपर्णः' रूप बनेगा।

**(वार्तिक) नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः। अविद्यमानपुत्रः अपुत्रः।** 'नञ्' के बाद अस्त्यर्थ (विद्यमान अर्थ वाले) पद का अन्य पद के साथ बहुव्रीहि समास होता है और उसके उत्तरपद का विकल्प से लोप हो जाता है।

जैसे—'अपुत्रः'–'अविद्यमान पुत्रः' में अविद्यमान का पुत्र के साथ समास तथा अविद्यमान के उत्तरपद विद्यमान का विकल्प से लोप होकर 'अपुत्रः' रूप बनता है।

**अपुत्रः** (पुत्र रहित, जिसका पुत्र न हो)

'अविद्यमानः पुत्रो यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'अविद्यमान सु पुत्र सु' अलौकिक विग्रह में 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' वार्तिक से अविद्यमान अर्थवाले 'अविद्यमान सु' का 'पुत्र सु' के 'नञ्' बहुव्रीहि समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् का लोप प्राप्त हुआ–अविद्यमान पुत्र। पुनः 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' वार्तिक से ही 'अस्त्यर्थ' अर्थवाले 'अविद्यमान' के उत्तरपद 'विद्यमान' का लोप-अपुत्र। पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर, फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'अपुत्रः' सिद्ध हुआ। विकल्प से लोप न करने पर 'अविद्यमानपुत्रः' बनेगा।

**९६८. स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियाम- पूरणीप्रियादिषु ६।३।३४।।**

**उक्तपुंस्काद् अनूङ् ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिः, निपातनात् पंचम्या अलुक्, षष्ठ्याश्च लुक्। तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः। गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः। चित्रगुः। रूपवद्भार्यः। अनूङ् किम्–वामोरूभार्यः।**

पूरणी (प्रथमा, द्वितीया, तृतीया आदि) शब्द और प्रियादिगण कै शब्द को छोड़कर अन्य कोई समानाधिकरण स्त्रीलिंग शब्द उत्तरपद के रूप में, बाद में हो तो 'ऊङ्' प्रत्ययान्त भिन्न स्त्रीवाचक और भाषितपुंस्क पद के रूप पुल्लिङ्ग में समान होते हैं।

यहाँ 'भाषितपुंस्क' का तात्पर्य है जिसका प्रयोग पुल्लिंग और उससे भिन्न लिङ्ग में एक ही निमित्त से होता हो। जैसे—'चित्रगुः', 'चित्रा गावो यस्य सः' में स्त्रीवाचक चित्रा पद का पुंवद् (पुल्लिंग) भाव होकर 'टाप्' प्रत्यय हटकर 'चित्र' शब्द बना और यह भाषितपुंस्क है इसमें 'ऊङ्' प्रत्यय भी नहीं है तथा समानाधिकरण स्त्रीलिंग 'गो' उत्तरपद बाद में है और यह न तो पूरणी और प्रियादिगण का शब्द ही है तब 'गो' उपसर्जन संज्ञा और उसको ह्रस्व 'गु' तथा प्रथमा एकवचन में 'सु' होकर 'चित्रगुः' सिद्ध होगा।

**चित्रगुः** (चितकबरी गायें हों जिसकी)

'चित्रा गावो यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'चित्रा जस् गो जस्' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से 'चित्रा सु' का 'गो जस्' के साथ बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् का लोप प्राप्त हुआ–चित्रा गो। 'स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु' से 'चित्रा' शब्द का पुंवद्भाव अर्थात् पुल्लिंग–चित्र। 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' से 'गो' शब्द की उपसर्जन संज्ञा किन्तु उसका पूर्व प्रयोग नहीं होगा। उपसर्जन संज्ञक 'गो' पद स्त्रीप्रत्ययान्त है। अतः 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से 'गो' के अन्तिम स्वर 'ओ' को ह्रस्व 'उ'–चित्रगु। पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लाने पर–चित्रगु सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप–चित्रगु स्। 'ससजुषोः रुः' से 'स्' को 'रु', 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप–चित्रगुर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग (:) आदेश होकर 'चित्रगुः' सिद्ध हुआ ।

**रूपवद्भार्यः**(रूपवती पत्नी वाला)

'रूपवती भार्या यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'रूपवती सु भार्या सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से 'रूपवती सु' का 'भार्या सु' के साथ बहुव्रीहि समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ–रूपवती भार्या। 'स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु' से 'रूपवती' शब्द का पुंवद्भाव रूपवत्–रूपवत्भार्या–रूपवद्भार्या। 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' से 'भार्या' शब्द की उपसर्जन संज्ञा किन्तु उसका पूर्व प्रयोग नहीं होगा। उपसर्जन संज्ञक 'भार्या' पद स्त्रीप्रत्ययान्त है। अतः 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से 'भार्या' के अन्तिम स्वर 'आ' को ह्रस्व 'अ'–रूपवद्भार्य। पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लाने पर–रूपवद्भार्य सु। 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से 'सु' के 'उ' की इत्संज्ञा तथा लोप–रूपवद्भार्य स्। 'ससजुषोः रुः' से 'स्' को 'रु', 'रु' के उ की इत्संज्ञा तथा लोप–रूपवद्भार्यर्। 'विरामोऽवसानम्' से 'र्' की अवसान संज्ञा। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग (:) आदेश होकर 'रूपवद्भार्यः' सिद्ध हुआ।

अनूङ् किम् का तात्पर्य है 'उङ्' प्रत्ययान्त रहित स्त्रीवाचक शब्द; क्योंकि 'ऊङ्' प्रत्ययान्त स्त्रीवाचक शब्द का पुंवद् (पुल्लिंग) भाव नहीं होता है। जैसे—'वामोरूभार्यः'–'वामोरू भार्या यस्य सः'–के अन्त में 'ऊङ्' प्रत्यय है। अतः उसका 'पुंवद्भाव' होकर ह्रस्व नहीं होगा तथा समानाधिकरण स्त्रीलिंग भार्या उत्तरपद परे है, अतः 'गोस्त्रियो०' से भार्या के अन्तिम 'आ' का ह्रस्व 'अ' आदेश होकर 'वामोरूभार्यः' रूप बनेगा।

**९६९. अप्-पूरणी-प्रमाण्योः ५।४।११६।।**

**पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिङ्गम्, तदन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहिः अप् स्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपंचमा रात्र्यः। स्त्री प्रमाणी यस्य स स्त्रीप्रमाणीः। अप्रियादिषु किम्? कल्याणीप्रिय इत्यादि।**

जिस बहुव्रीहि समास के अन्त में पूरणार्थक प्रत्यय से अन्त होने वाले स्त्रीलिंग शब्द हों या प्रमाणी से अन्त होने वाले शब्द हों तो उस समासान्त से 'अप्' (अ) प्रत्यय होता है।

**कल्याणीपञ्चमा रात्र्यः** (जिन रात्रियों में पाँचवी रात्रि शुभ हो)

'कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रिणां ताः' लौकिक विग्रह, 'कल्याणी सु पञ्चमी सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ-कल्याणी पञ्चमी। 'स्त्रियाः पुंवद्भाषित०' से पञ्चमी पूरणार्थ संख्या परे रहने पर कल्याणी को पुंवद्भाव नहीं होगा। 'अप्पूरणी०' से 'अप्' प्रत्यय, 'अप्' के 'प्' का अनुबन्ध लोप-कल्याणी पञ्चमी अ। 'यचिभम' से भसंज्ञा। 'यस्येति च' से पञ्चमी के ई का लोप-कल्याणीपञ्चम् अ। स्त्रीत्व विवक्षा में 'टाप्' (आ)-कल्याणीपञ्चम आ। पुनः प्रथमा बहुवचन में 'जस्' प्रत्यय करने पर, फिर विभक्ति आदि कार्य 'कल्याणीपञ्चमाः' रूप बनेगा।

**स्त्रीप्रमाणः** (स्त्री जिसके लिए हो)

'स्त्री प्रमाणी यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'स्त्री सु प्रमाणी सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ-स्त्रीप्रमाणी। 'अप्पूरणी०' से प्रमाणी शब्द होने से 'अप्' प्रत्यय, 'अप्' के 'प्' का अनुबन्ध लोप-स्त्रीप्रमाणी अ। 'यचिभम' से भसंज्ञा। 'यस्येति च' से प्रमाणी के 'ई' का लोप-स्त्रीप्रमाण् अ। पुनः पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर, फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर स्त्रीप्रमाणः रूप बनेगा।

'अप्रियादिषु' किम् तात्पर्य है प्रियादि शब्द के परे न होने पर स्त्रीलिंगवाचक शब्द का पुल्लिंग होता है, किन्तु प्रियादि शब्द परे हो तो स्त्रीलिंग को पुल्लिंग नहीं होगा।

जैसे—'कल्याणीप्रियः'-'कल्याणी प्रिया यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'कल्याणी सु' प्रिया सु अलौकिक विग्रह में बहुव्रीहि समास होने पर कल्याणी से परे 'प्रिया' शब्द होने के कारण कल्याणी को पुंवद् (पुल्लिंग) भाव नहीं होगा। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से 'प्रिया' को ह्रस्व 'प्रिय' होकर कल्याणीप्रिय बना, तब पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर 'कल्याणीप्रियः' सिद्ध होगा।

**९७०. बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ५।४।११३।।**

**स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद् बहुव्रीहेः षच् स्यात्। दीर्घसक्थः। जलजाक्षी। स्वाङ्गात् किम्? दीर्घसक्थि शकटम्, स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः। अक्ष्णोऽदर्शनाद इति वक्ष्यमाणोऽच्।**

यदि बहुव्रीहि समास के अन्त में शरीर के अवयववाची सक्थि (जाँघ) और अक्षि (आँख) शब्द हों तो समासान्त 'षच्' प्रत्यय होता है।

**दीर्घसक्थः** (बड़ी जाघों वाली)

'दीर्घे सक्थिनी यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'दीर्घ औ सक्थि औ' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ–दीर्घसक्थि। 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्' 'षच्' से 'षच्' प्रत्यय, 'षच्' के 'ष' और 'च्' का अनुबन्ध लोप,–दीर्घसक्थि अ। 'यचिभम' से भसंज्ञा। 'यस्येति च' से सक्थि के 'इ' का लोप–दीर्घसक्थ् अ। पुनः पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर, फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'दीर्घसक्थः' रूप बनेगा।

**जलजाक्षी** (जिसके नेत्र कमल के समान हों ऐसी स्त्री)

'जलजे इव अक्षिणी यस्याः सा' लौकिक विग्रह, 'जलज औ अक्षि औ' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ–जलज अक्षि। दीर्घ होकर–जलजाक्षि। 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' से 'षच्' प्रत्यय, 'षच्' के 'ष' और 'च्' का अनुबन्ध लोप–जलजाक्षि अ। 'यचिभम' से भसंज्ञा। 'यस्येति च' अक्षि के 'इ' का लोप–जलजाक्ष् अ। 'षित्' होने से स्त्रीत्व विवक्षा में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' से 'ङीष' प्रत्यय होकर 'जलजाक्षी' सिद्ध होगा।

स्वाङ्गात् किम्? प्राणी के अंगवाचक होने पर अर्थात् सक्थि और अक्षि से अन्त होने वाले शब्द यदि प्राणी कै अंग के वाचक हों तो उससे 'षच्' प्रत्यय होता है। जैसे–'दीर्घसक्थि शकट' (लम्बे धुरे वाली गाड़ी) और 'स्थूलाक्षा वेणुयष्टि' (मोटी आँखों वाली बास की लाठी) में आये हुए सक्थि और अक्षि प्राणी कै अंग कै वाचक नहीं हैं (अपितु वे शकट और यष्टि के वाचक हैं जो प्राणी नहीं हैं। अतः यहाँ 'षच्' प्रत्यय नहीं होगा। तब 'अक्ष्णोऽदर्शनात्' (९७९) से समासान्त 'अच्' प्रत्यय, 'यस्येति च' से स्थूलाक्षि कै इ का लोप होकर स्थूलाक्ष बना, तब स्त्रीत्व विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' से 'टाप्' (आ) प्रत्यय लगकर 'स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः' बना।

**९७१. द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ५।४।११५।।**

**आभ्यां मूर्ध्नः षः स्यात् बहुव्रीहौ। द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः।**

बहुव्रीहि समास में द्वि और त्रि के बाद मूर्धन् (सिर) से समासान्त ष (अ) प्रत्यय होता है।

**द्विमूर्धः** (दो सिरवाला)

'द्वौ मूर्धानौ यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'द्विऔ मूर्धन् औ' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ–द्विमूर्धन्। 'द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः' से 'ष' प्रत्यय, 'ष' के 'ष' का अनुबन्ध लोप, 'अ' शेष–द्विमूर्धन् अ। 'यचिभम' से भसंज्ञा। 'नस्तद्धिते' से टि 'अन्' का लोप– द्विमूर्ध् अ। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर, फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'द्विमूर्धः' सिद्ध हुआ।

**त्रिमूर्धः** (तीन सिरवाला)

'त्रयः मूर्धानः' यस्य सः, लौकिक विग्रह, 'त्रि जस् मूर्धन् जस्' अलौकिक विग्रह में अनेकमन्यपदार्थे से बहुव्रीहि समास तथा शेष कार्य 'द्विमूर्धः' की तुल्य होगा।

**९७२. अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ५।४।११७।।**

**आभ्यां लोम्नोऽप् स्यात् बहुव्रीहौ। अन्तर्लोमः। बहिर्लोमः।**

बहुव्रीहि समास में यदि अन्तर् और बहिर् शब्द के बाद लोमन् हो तो समासान्त 'अप्' (अ) प्रत्यय होता है।

**अन्तर्लोमः** (जिसके रोम भीतर हों)

'अन्तर् लोमानि यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'अन्तर् लोमन् जस्' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ-अन्तर्लोमन्। 'अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः' से 'अप्' प्रत्यय, 'अप्' के 'प्' का अनुबन्ध लोप-अन्तर्लोमन् अ। 'यचिभम' से भसंज्ञा। 'नस्तद्धिते' से टि 'अन्' का लोप-अन्तर्लोम् अ-अन्तर्लोम। पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर, फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'अन्तर्लोमः' सिद्ध हुआ।

**बहिर्लोमः** (जिसके रोम बाहर हों)

'बहिर् लोमानि यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'बहिर् लोमन् जस्' अलौकिक विग्रह में अनेकमन्यपदार्थे से बहुव्रीहि समास तथा शेष कार्य 'अन्तर्लोमः' की तुल्य होगा।

**९७३. पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ५।४।१३८।।**

**हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद् बहुव्रीहौ। व्याघ्रस्येव पादावस्य-व्याघ्रपात्। अहिस्त्यादिभ्यः किम् ? हस्तिपादः। कुसूलपादः।**

बहुव्रीहि समास में हस्ति आदि को छोड़कर अन्य किसी उपमान के बाद पाद शब्द का लोप हो जाता है, 'अलोऽन्त्यस्य' सूत्र से पाद के अन्तिम अल् 'अ' का ही लोप होगा। हस्तादिगण में पठित शब्द हैं—हस्तिन्, कुद्दाल, अश्व आदि।

**व्याघ्रपात्** (व्याघ्र के समान पैर वाला)

'व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'व्याघ्र ङस् पाद औ' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से व्यधिकरण बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ-व्याघ्रपाद। 'पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः' से 'पाद' का लोप तथा अलोऽन्त्यस्य से अन्तिम अल् 'अ' का लोप- व्याघ्रपाद्। 'वाऽवसाने' से 'द्' का 'त्'-व्याघ्रपात्। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर, 'हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से 'सु' का लोप होकर 'व्याघ्रपात्' सिद्ध हुआ।

**'अहस्त्यादि' किम् ?** हस्ति आदि को छोड़कर) ऐसा क्यों कहा गया? क्योंकि हस्ति आदि कै उपमान के रूप में होने पर तथा उनके साथ 'पाद' का बहुव्रीहि समास हो तो पाद के अ का लोप नहीं होगा। जैसे—'हस्तिपादः' (हाथी कै समान पैर वाला)

लौकिक विग्रह-'हस्तिनः इव पादौ यस्य सः' एवं अलौकिक विग्रह-'हस्तिन् ङस् पाद औ' का बहुव्रीहि समास हुआ, किन्तु सूत्र में 'हस्ति' आदि को छोड़कर कहा गया, अतः 'पाद' के 'अ' का लोप नहीं होगा। तब पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'हस्तिपादः' बनेगा। इसीप्रकार 'कुसूलपादः' (कुसूल या बड़ा घड़ा के समान पैर वाला) लौकिक विग्रह-'कुसूलस्य इव पादौ यस्य सः' एवं अलौकिक विग्रह-'कुसूल ङस् पाद औ' में समास होकर 'अ' का लोप नहीं हुआ तथा प्रथमा एकवचन में 'कुसूलपादः' बना।

**९७४. संख्या-सु-पूर्वस्य ५।४।१४०।।**

**पादस्य लोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ। द्विपात्। सुपात्।**

बहुव्रीहि समास में संख्यावाचक शब्द और 'सु' के बाद 'पाद' शब्द हो तो पाद के अन्तिम 'अ' का समासान्त लोप होता है।

**द्विपात्** (जिसकै दो पैर हों)

'द्वौ पादौ यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'द्विऔ पाद औ' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ-द्विपाद। 'संख्यासुपूर्वस्य' से 'पाद' के 'अ' का लोप-द्विपाद्। 'वाऽवसाने' से 'द्' का 'त्'-द्विपात्। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर, 'हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से 'सु' का लोप होकर 'द्विपात्' सिद्ध हुआ।

**सुपात्** (जिसके सुन्दर पैर हों)

'शोभनौ पादौ यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'सु पाद औ' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास तथा शेष कार्य 'द्विपात्' कै तुल्य होगा।

**९७५. उद्विभ्यां काकुदस्य ५।४।१४८।।**

**लोपः स्यात्। उत्काकुत्, विकाकुत्।**

बहुव्रीहि समास में 'उद्' और 'वि' के बाद 'काकुद' शब्द हो तो काकुद के अन्तिम 'अ' का लोप होता है।

**उत्काकुत्** (जिसका तालु ऊपर उठा हो)।

'उद्गतं काकुदं यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'उद् काकुद सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ-उद्काकुद। 'उद्विभ्यां काकुदस्य' से 'काकुद' का समासान्त लोप और 'अलोऽन्त्यस्य' से अन्तिम अल् 'द' के 'अ' का लोप-उद्काकुद्। 'वाऽवसाने' से 'द' का 'त'-उत्काकुत्। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर, 'हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से 'सु' का लोप होकर 'उत्काकुत्' सिद्ध हुआ।

**विकाकुत्** (जिसका तालु विकृत हों)

'विगतं काकुदं यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'वि काकुद सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास तथा शेष सभी कार्य 'उत्काकुत्' के तुल्य होगा।

**९७६. पूर्णाद् विभाषा ५।४।१४९।।**

**पूर्णकाकुत् , पूर्णकाकुदः।**

बहुव्रीहि समास में पूर्ण शब्द के काकुद शब्द के अन्तिम 'अ' का विकल्प से समासान्त लोप होता है।

**पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः** (जिसका तालु पूर्ण हो)

'पूर्ण काकुदं यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'पूर्ण सु काकुद सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ-पूर्णकाकुद। 'पूर्णाद्विभाषा' सूत्र से 'काकुद' के अन्तिम 'अ' का विकल्प से समासान्त लोप-पूर्णकाकुद्। 'वाऽवसाने' से 'द्' का 'त्'-पूर्णकाकुत्। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-पूर्णकाकुत् सु। 'हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से सु का लोप होकर पूर्णकाकुत् सिद्ध हुआ।

विकल्प से 'काकुद' के अन्तिम 'अ' का लोप न करने पर-पूर्णकाकुद तथा पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर, 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'पूर्णकाकुदः' सिद्ध होगा।

**९७७. सुहृद्-दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः ५।४।१५०।।**

**सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते। सुहृद्-मित्रम्। दुर्हृद्-अमित्रः।**

बहुव्रीहि समास में क्रमशः मित्र और शत्रु के अर्थ में सु और दुर् के बाद 'हृदय' का 'हृद' निपातन से होता है। निपातन का तात्पर्य है जो कार्य बिना सूत्र या नियम के हो निपातन होता है। (लक्षणं विनैव निपतति प्रवर्तते लक्ष्येषु इति निपातनम्।)

**सुहृत्** (मित्र)

'शोभनं हृदयं यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'सु हृदय सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ- सुहृदय। 'सुहृद्-दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः' सूत्र से 'हृदय' को 'हृद्'-सुहृद्। 'वाऽवसाने' से 'द्' का 'त्'-सुहृत्। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर-सुहृत् सु। 'हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से 'सु' का लोप होकर सुहृत् सिद्ध हुआ।

**दुर्हृत्** (शत्रु)

'दुष्टं हृदयं यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'दुर् हृदय सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास तथा शेष सभी कार्य 'सुहृत्' की तरह होगा।

**९७८. उरः प्रभृतिभ्यः कप् ५। ४। १५१।।**

बहुव्रीहि समास में उरस् आदि शब्द से समासान्त 'कप्' (क) प्रत्यय होता है।

'उरस्' आदि के अन्तर्गत आने वाले शब्द हैं—उरस्, सर्पिस्, उपानह, पुमान्, अनड्वान् आदि।

**९७९. कस्कादिषु च ८।३।४८।।**

**एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षः, अन्यस्य तु सः। इति सः-व्यूढोरस्कः। प्रियसर्पिष्कः।**

कास्क आदि गण में पठित शब्दों में 'इण्' अर्थात् इ, उ के बाद विसर्ग को 'ष' आदेश होता है, किन्तु अन्य स्थान पर विसर्ग को 'स्' हो। कस्कादिगण में पठित शब्द हैं—कस्क, कौतस्कुतः, भ्रातुष्पुत्र आदि।

**व्यूढोरस्कः** (विशाल वक्षस्थल वाला)

'व्यूढम् उरो यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'व्यूढ सु उरस्' सुअलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ-व्यूढ उरस्। 'आद्गुणः' से अ + उ = ओ गुण एकादेश-व्यूढोरस्। 'उरः प्रभृतिभ्यः कप्' सूत्र से 'कप्' प्रत्यय, 'कप्' के 'प्' का अनुबन्ध लोप-व्यूढोरस् क। 'ससजुषोः रुः' से 'स्' को 'रु' तथा 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा और लोप-व्यढोरर्क। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग- व्यढोरः क।'कस्कादिषु च' से विसर्ग को 'स्'-व्यूढोरस्क। पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर, फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'व्यूढोरस्कः' सिद्ध हुआ।

**प्रियसर्पिष्कः**(जिसे घृत प्रिय हो)

'प्रियम् सर्पिः यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'प्रिय सु सर्पिस् सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ-प्रियसर्पिष्क। 'उरः प्रभृतिभ्यः' कप् सूत्र से 'कप्' प्रत्यय तथा शेष सभी कार्य 'व्यूढोरस्कः' के तुल्य होगा।

**९८०. निष्ठा २।२।३६।।**

**निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। युक्तयोगः।**

बहुव्रीहि समास में निष्ठान्त अर्थात् जिसके अन्त में 'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्यय लगे हों उसका पहले प्रयोग होता है।

**युक्तयोगः**(जिसने योग लगाया है-योगी)

'युक्तो योगो येन सः' लौकिक विग्रह, 'युक्त सु योग सु' अलौकिक विग्रह में बहुव्रीहि समास, प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुप्' का लोप होकर यक्तयोग बना, 'युक्त' शब्द 'क्त' प्रत्ययान्त है अतः 'निष्ठा' सूत्र से 'युक्त' का पूर्व प्रयोग तथा पुल्लिंग प्रथमा एकचवन में 'सु' प्रत्यय लगने पर, 'सु' का विसर्ग होकर 'युक्तयोगः' सिद्ध होगा।

**९८१. शेषाद्विभाषा ५।४।१५४।।**

**अनुक्तसमासान्ताद् बहुव्रीहेः कप् वा। महायशस्कः। महायशाः।**

शेष स्थानों पर विकल्प से समासान्त 'कप्' प्रत्यय हो बहुव्रीहि में।

अभिप्राय यह है कि जिस बहुव्रीहि समास से किसी समासान्त प्रत्यय का विधान न किया गया हो उससे विकल्प से समासान्त 'कप्' (क) प्रत्यय होता है।

**महायशस्कः** (जिसका यश महान् हो)

'महत् यशो यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'महत् सु यशस् सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा

'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ–महत् यशस्। किसी प्रत्यय का विधान न होने कारण 'शेषाद्विभाषा' सूत्र से विकल्प से सूत्र से 'कप्' प्रत्यय, 'कप्' के 'प्' का अनुबन्ध लोप–महत् यशस् क। 'आन्महतः०' से महत् के 'त्' को 'आ'–महायशस् क। 'ससजुषो: रुः' से 'स्' को 'रु' तथा 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा और लोप–महायशर् क। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग–महायशः क। 'सोऽपदादौ' से विसर्ग को 'स्'–महायशस्क। पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर महायशस्कः सिद्ध हुआ।

विकल्प से 'कप्' प्रत्यय न करने पर–

**महायशस्कः** (जिसका यश महान् हो)

'महत् यशो यस्य सः' लौकिक विग्रह, 'महत् सु यशस् सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप प्राप्त हुआ–महत् यशस्। 'आन्महतः०' से महत् के 'त्' को 'आ'–महायशस्। 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' सूत्र से उपधा के 'अ' को दीर्घ 'आ'–महायशास्। 'ससजुषोः रुः' से 'स्' को 'रु' तथा 'रु' के 'उ' की इत्संज्ञा और लोप–महायशार्। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'र्' को विसर्ग होकर 'महायशाः' सिद्ध हुआ।

इति बहुव्रीहि समास

## ५. द्वन्द्व समास

जिस समास में प्रायः सभी पद प्रधान होते हैं तथा विग्रह करने पर सभी पद 'च' (और) शब्द से जुड़ते हैं उसे 'द्वन्द्व' समास कहते हैं। द्वन्द्व समास के तीन भेद हैं–

**१. इतरेतर द्वन्द्वसमास**–जब (इतरे + इतरे) अलग-अलग संज्ञाओं का समास होता है तब वह इतरेतर कहा जाता है। समास करने पर बना हुआ समस्तपद का लिंग बाद वाले पद के लिंग के आधार पर होता है। यदि समास दो सुबन्त पदों का है तो द्विवचन में और दो से अधिक सुबन्त पदों का समास है तो बहुवचन में हुआ करता है। जैसे–'रामश्च कृष्णश्च' = 'रामकृष्णौ'। 'रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च' = 'रामलक्ष्मणभरताः'।

**२. समाहार द्वन्द्व समास**–जब समास में ऐसी संज्ञायें हों जो 'च' से जुड़ी हों और अपना अर्थ बतलाने के साथ-साथ प्रधानतया एक समाहार (समूह) का ज्ञान कराती हैं तो उसे समाहार द्वन्द्व कहते हैं। और बना हुआ समस्त पद सदा नपुंसकलिंग एकवचन में रहता है। प्राणी, वाद्य, सेना के अंग, स्वाभाविक वैर वाले प्राणियों तथा अप्राणिवाचक जाति में यह समास होता है। जैसे–'पाणी च पादौ च'–'पाणिपादम्' (हाथ और पैर का समूह)।

**३. एकशेष द्वन्द्व समास**–जिस द्वन्द्व समास में समान रूप से आने वाले पदों में से एकशेष रह जाता है और समस्त पद अपनी विभक्ति द्वारा अर्थ का ज्ञान कराता है एकशेष द्वन्द्व समास कहलाता है। जैसे–'रामश्च रामश्च' = 'रामौ' (राम और परशुराम)। जब स्त्रीवाचक और पुरुषवाचक पदों का समास होता है तो पुरुषवाचक पद शेष रह जाता है

और बना हुआ समस्त पद अपने लिंग वचन और भाव के अनुसार अर्थ बतलाता है। जैसे—'माता च पिता च' = 'पितरौ'।

**९८२. चार्थे द्वन्द्वः २।२।२९।।**

**अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स द्वन्द्वः। समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोग-समाहाराः चार्थाः। तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व' इति परस्पर निरपेक्षस्यानेकस्यै-कस्मिन्नन्वयः समुच्चयः। 'भिक्षामट गां चानय' इति अन्यतरस्याऽऽनुष-ङ्गिकत्वेनाऽन्वयोऽन्वाचयः। अनयोरसामर्थ्यात् समासो न। 'धव-खदिरौ छिन्धि' इति मिलितानामन्वयः इतरेतरयोगः। 'संज्ञापरिभाषम् इति समूहः समाहारः।**

'च' के अर्थ में वर्तमान अनेक सुबन्तों का विकल्प से समास होता है। उसे द्वन्द्व समास कहते हैं।

'च' के चार अर्थ होते हैं—१. समुच्चय २. अन्वाचय ३. इतरेतरयोग और ४. समाहार।

**१. समुच्चय**—जब परस्पर निरपेक्ष अनेक पदार्थों का एक पदार्थ में अन्वय होता है तब वहाँ 'च' का अर्थ समुच्चय होता है। जैसे—'ईश्वरं गुरुं च भजस्व' (ईश्वर और गुरु की सेवा करो) में ईश्वर और गुरु दोनों पदार्थ निरपेक्ष हैं और इन दोनों का 'भजस्व' क्रिया रूप एक पदार्थ में अन्वय हुआ है। अतः यहाँ निरपेक्ष होने से समास नहीं होगा।

**२. अन्वाचय**—जब समुच्चय किये जाने वाले पदार्थों में एक का गौण रूप अन्वय हो तो या जब अन्वय किये जाने वाले पदार्थों में से एक प्रधान (मुख्य) और दूसरा गौण रूप होता है तो उसे अन्वाचय कहते हैं। जैसे—'भिक्षाम् अट गां च आनय' (भिक्षा के लिए जाओ और गाय भी लाओ) में 'भिक्षा अट' प्रधान है और 'गामानय' गौण रूप से अन्वित है। अतः यहाँ समुच्चय और अन्वाचय में सामर्थ्य न होने से समास नहीं होगा।

**३. इतरेतरयोग**—जब अलग-अलग पदार्थ एक साथ मिलकर आगे आने वाले पद के साथ अन्वित होते हैं तब वहाँ 'च' का अर्थ इतरेतरयोग होता है। जैसे—'धवखदिरौ छिन्धि' (धव और खैर को काटो) में 'धव' और 'खदिर' पदार्थ परस्पर मिलकर आगे आने वाले 'छिन्धि' क्रिया के साथ अन्वित हैं। अतः यहाँ इतरेतरयोग है।

**४. समाहार**—समूह को समाहार कहते हैं। इसमें पदार्थो कै समूह का अन्वय होता है। जैसे—संज्ञा च परिभाषा च-संज्ञापरिभाषम् (संज्ञा और परिभाषा का समूह) में 'च' का प्रयोग समाहार अर्थ में किया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इतरेतर और समाहार के अर्थ में वर्तमान अनेक सुबन्तों का परस्पर समास होता है।

**९८३. राजदन्तादिषु परम् २।२।३१।।**

**एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात्। दन्तानां राजा-राजदन्तः।**

राजदन्त आदि शब्दों में जिसका प्रयोग पहले होना चाहिए उसको बाद में रखा जाता है। राजदन्त आदि गण में पठित शब्द हैं राजदन्त, अग्रेवण आदि। इस गण में कुल ५७ शब्द हैं।

**राजदन्तः** (दातों का राजा)

'दन्तानां राजा' लौकिक विग्रह, 'दन्त आम् राजन् सु' अलौकिक विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से 'दन्त आम्' का 'राजन् सु' के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ। यहाँ 'षष्ठ्यन्त' पद प्रथमान्त है। अतः 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'दन्त आम्' की उपसर्जन संज्ञा। 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'दन्त आम्' का पूर्व प्रयोग प्राप्त था किन्तु 'राजदन्तादिषु परम्' से 'दन्त आम्' का पहले प्रयोग न होकर उसे बाद में रखा जायगा-राजन् सु दन्त आम्। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् सु और आम् का लोप। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से राजन् के 'न्' का लोप-राजदन्त। पुल्लिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय करने पर, फिर 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'राजदन्तः' सिद्ध होगा।

**(वार्तिक) धर्मादिष्वनियमः। अर्थधर्मौ, धर्मार्थौ इत्यादि।**

धर्म आदि शब्दों में किसे पहले या बाद में रखा जाय, इसका कोई नियम नहीं है। इच्छानुसार किसी को भी पहले रख सकते हैं। जैसे—'धर्मश्च अर्थश्च' = धर्मार्थौ। 'अर्थश्च धर्मश्च' =अर्थधर्मौ।

**धर्मार्थौ** (धर्म और अर्थ)

'धर्मश्च अर्थश्च' लौकिक विग्रह, 'धर्म सु अर्थ सु' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से 'धर्म सु' का 'अर्थ सु' के साथ इतरेतरयोग द्वन्द्व समास हुआ। 'धर्मादिष्वनियमः' वार्तिक से किसी को भी पहले रख सकते हैं। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-धर्म अर्थ। दीर्घ करने पर-धर्मार्थ। प्रथमा द्विवचन में 'औ' प्रत्यय करने पर-धर्मार्थ औ। फिर 'औ' का विभक्ति कार्य होकर 'धर्मार्थौः' सिद्ध होगा। 'धर्मार्थौ' के तुल्य 'अर्थधर्मौ' भी सिद्ध होगा।

**९८४. द्वन्द्वे घि २।२।३२।।**

**द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात्। हरिश्च हरश्च हरिहरौ।**

द्वन्द्वसमास में घिसंज्ञक पद का प्रयोग पहले होता है।

**हरिहरौ** (विष्णु और शिव)

'हरिश्च हरश्च' लौकिक विग्रह, 'हरि सु हर सु' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से 'हरि सु' का 'हर सु' के साथ द्वन्द्व समास हुआ। 'शेषोध्यसखि' सूत्र से 'हरि' पद की घि संज्ञा। 'द्वन्द्वे घि' सूत्र से 'हरि' पद का पूर्व प्रयोग-हरि सु हर सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-हरिहर। प्रथमा द्विवचन में 'औ' प्रत्यय करने पर-हरिहर औ। फिर 'औ' का विभक्ति कार्य होकर 'हरिहरौ' सिद्ध होगा।

**९८५. अजाद्यन्तम् २।२।३३।।**

**इदं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्। ईशकृष्णौ।**

जिस द्वन्द्व समास के प्रारम्भ में अजादि (स्वर) हों और अन्त में अदन्त (ह्रस्व अ) हो उस पद का प्रयोग पहले होता है। जैसे—'ईशकृष्णौ' में 'ईश' अजादि और अदन्त है।

**ईशकृष्णौ** (ईश्वर और कृष्ण)

'ईशश्च कृष्णश्च' लौकिक विग्रह, 'ईश सु कृष्ण' सुअलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से द्वन्द्व समास। 'अजाद्यन्तम्' सूत्र से 'ईश' का पहले प्रयोग हुआ-ईश सु कृष्ण सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा।'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप- ईशकृष्ण। प्रथमा के द्विवचन में 'औ' प्रत्यय लगने पर, फिर विभक्ति आदि कार्य होकर 'ईशकृष्णौ' सिद्ध होगा।

**९८६. अल्पाच्तरम् २।२।३४।।**

**शिवकेशवौ ।**

जिस द्वन्द्व समास में अन्य पदों की अपेक्षा अल्प (थोड़े) स्वर वर्ण वाले पद हों उसका प्रयोग पहले होता है। जैसे—'शिवकैशवौ' में, 'शिव' में 'केशव' की अपेक्षा कम स्वर हैं, अतः 'शिव' का प्रयोग पहले होगा।

**शिवकेशवौ** (शिव और कृष्ण)

'शिवश्च केशवश्च' लौकिक विग्रह, 'शिव सु के शव सु' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से द्वन्द्वसमास। 'अल्पाच्तरम्' सूत्र से 'शिव' का पहले प्रयोग हुआ-शिव सु कैशव सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-शिवकेशव। प्रथमा के द्विवचन में 'औ' प्रत्यय लगने पर, फिर विभक्ति आदि कार्य होकर 'शिवकेशवौ' सिद्ध होगा।

**९८७. पिता मात्रा १।२।७०।।**

**मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च पितरौ, मातापितरौ।**

माता शब्द के साथ पिता शब्द का द्वन्द्व समास होने पर पिता शब्द विकल्प से शेष रहता है।

**पितरौ** (माता और पिता)

'माता च पिता च' लौकिक विग्रह, 'मातृ सु पितृ सु' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से एकशेष द्वन्द्व समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप- मातृ पितृ। 'पिता मात्रा' सूत्र से 'मातृपितृ' में से 'पितृ' पद विकल्प से शेष-पितृ। दो का समुदाय होने से प्रथमा के द्विवचन में 'औ' प्रत्यय-पितृ औ। 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' से सर्वनामस्थान 'ऋ' को गुण 'अर्' आदेश (पित् अर् औ) होकर 'पितरौ' सिद्ध हुआ।

**मातापितरौ** (माता और पिता)

'माता च पिता च' लौकिक विग्रह, 'मातृ सु पितृ सु' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से द्वन्द्वसमास हुआ। 'अभ्यर्हितं पूर्वम्' से 'मातृ' पद पूर्व प्रयोग-मातृ सु पितृ सु। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-मातृ पितृ। 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' से 'मातृ' के 'ऋ' को 'आनङ्' आदेश, 'आनङ्' के 'नङ्' का अनुबन्ध लोप-मात् आपितृ-मातापितृ। दो का समुदाय होने से प्रथमा के द्विवचन में 'औ' प्रत्यय-मातापितृ औ। 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' से सर्वनामस्थान 'ऋ' को गुण 'अर्' आदेश (मातापित् अर् औ) होकर 'मातापितरौ' सिद्ध होगा।

**९८८. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् २।४।२।।**

**एषां द्वन्द्व एकवत्। पाणिपादम्। मार्दङ्गिकवैणविकम्। रथिकाश्वारोहम्।।**

प्राणि के अंगवाचक (हाथ, पैर आदि) तूर्य के अंगवाचक (वंशी, मृदंग आदि) और सेना के अंगवाचक (घोड़े, रथ आदि) पदों का समाहार अर्थ में द्वन्द्व एकवचन होता है।

**पाणिपादम** (हाथ-पैर)

'पाणी च पादौ च' लौकिक विग्रह, 'पाणि औ पाद औ' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार अर्थ में 'पाणि औ' का 'पाद औ' के साथ समाहार द्वन्द्वसमास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-पाणि पाद। 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' सूत्र से एकवद्भाव (एकवचन) हुआ। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकलिंग। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लगने पर-पाणिपाद सु। पाणिपाद सु। 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्'। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'पाणिपादम्' सिद्ध हुआ।

**मार्दङ्गिकवैणविकम्** (मृदंग बजाने वाला और वंशी बजाने वाला)

'मार्दङ्गिक च वैणविक च' लौकिक विग्रह, 'मार्दङ्गिक **जस्** वैणविक जस्' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार अर्थ में **द्वन्द्वसमास**। शेष कार्य 'पाणिपादम्' के तुल्य होकर 'मार्दङ्गिकवैणविकम्' सिद्ध होगा।

**रथिकाश्वारोहम्** (रथिक और अश्वारोही)

'रथिकाश्च अश्वारोहश्च' लौकिक विग्रह, 'रथिक जस् अश्वारोह **जस्**' **अलौकिक** विग्रह में '**चार्थे द्वन्द्वः**' सूत्र से समाहार अर्थ में द्वन्द्वसमास शेष कार्य '**पाणिपादम्**' के तुल्य होकर 'रथिकाश्वारोहम्' सिद्ध होगा।

**९८९. द्वन्द्वात् चु-द-ष-हान्तात् समाहारे ५।४।१०६।।**

**चवर्गान्ताद् दषहान्ताच्च् द्वन्द्वट्टच् स्यात् समाहारे। वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्। छत्रोपाहनम्। समाहारे किम् ? प्रावृट्शरदौ।**

समाहार अर्थ में चवर्गान्त (च छ ज झ ञ तथा द् श् ह् से अन्त होने वाले द्वन्द्व से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है।)

**वाक्त्वचम्** (वाणी और त्वचा)

'वाक् च त्वच् च' लौकिक विग्रह, 'वाच् सु त्वच् सु' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार अर्थ में द्वन्द्वसमास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-वाच्त्वच्। 'चोः कुः' से 'वाच्' के 'च्' को 'क्'-वाक्त्वच्। 'द्वन्द्वाच्चुदशहान्तात् समाहारे' सूत्र से समासान्त 'टच्' 'प्रत्यय', 'टच्' के 'ट्' और 'च्' का अनुबन्ध लोप, 'अ' शेष- वाक्त्वच् अ। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकलिंग। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लगने पर-वाक्त्वच सु। 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्'। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'वाक्त्वचम्' सिद्ध हुआ।

**त्वक्स्रजम्** (त्वचा और माला)

'त्वक् च स्रक् च' लौकिक विग्रह, 'त्वच् सु स्रज् सु' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार अर्थ में द्वन्द्वसमास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-त्वच् स्रज्। 'चोः कुः' से 'वाच्' के 'च्' को 'क्'-त्वक् स्रज्। 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे' सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के 'ट्' और 'च्' का अनुबन्ध लोप-त्वक्स्रज अ। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकलिंग। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लगने पर-त्वक्स्रज सु। 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्'। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'त्वक्स्रजम्' सिद्ध हुआ।

**शमीदृषदम्** (शमी और सिलवट)

'शमी च दृषद् च' लौकिक विग्रह, 'शमी सु दृषद् सु' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार अर्थ में द्वन्द्वसमास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-शमीदृषद्। 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे' सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के 'ट्' और 'च्' का अनुबन्ध लोप-शमीदृषद् अ। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकलिंग। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लगने पर-शमीदृषद् सु। 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्'। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'शमीदृषदम्' सिद्ध हुआ।

**वाक्त्विषम्** (वाणी और तेज)

'वाक् च त्विट् च' लौकिक विग्रह, 'वाच् सु त्विष् सु' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार अर्थ में द्वन्द्वसमास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-वाच्त्विष्। 'चोः कुः' सूत्र से 'वाच्' के 'च्' को 'क्'-वाक्त्विष्। 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे' सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के 'ट्' और 'च्' का अनुबन्ध लोप 'अ' शेष-वाक्त्विष् अ। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकलिंग। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लगने पर-वाक्त्विष सु। 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्'। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'वाक्त्विषम्' सिद्ध हुआ।

**छत्रोपानहम्** (छाता और जूता)

'छत्रं च उपानहौ च' लौकिक विग्रह, 'छत्र सु उपानह् औ' अलौकिक विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार अर्थ में द्वन्द्वसमास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-छत्र उपानह्। 'आद्गुणः' से अ + उ = ओ गुण एकादेश-छत्रोपानह्च् 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे' सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय, 'टच्' के 'ट्' और 'च्' का अनुबन्ध लोप 'अ' शेष-छत्रोपानह् अ। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकलिंग। प्रथमा एकवचन में सु प्रत्यय लगने पर- छत्रोपानह सु। 'अतोऽम्' से 'सु' को 'अम्'। 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप एकादेश होकर 'छत्रोपानहम्' सिद्ध हुआ।

'समाहारे किम्' क्यों कहा गया? क्योंकि 'टच्' प्रत्यय समाहार अर्थ में ही होता है। इतरेतरयोग अर्थ में द्वन्द्वसमास के हाने पर 'टच्' प्रत्यय नहीं होगा। जैसे—'प्रावृट्शरदौ'

लौ०, 'प्रावृट् च शरद् च' अलौ०, 'प्रावृश् सु शरत् सु' में 'चार्थे द्वन्द्वः' से इतरेतरयोग में द्वन्द्वसमास होगा। प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति का लोप होकर 'प्रावृश्शरद्' बना। प्रावृश् के 'श्' को 'जश्' करने पर 'ड्' और 'ड्' को 'ट्'–प्रावृट् शरद्। प्रथमा द्विवचन में 'औ' 'प्रत्यय लगने पर' 'प्रावृट्शरदौ' बना।

इति द्वन्द्व समास

## समासान्त-प्रकरणम्

**९९०. ऋक्-पूरब्धूः पथामानक्षे ५।४।७४।।**

**अ अनक्षे इतिच्छेद। ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अ प्रत्ययोऽन्तावयवः स्यात्, अक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न। अर्धर्चः। विष्णुपुरम्। विमलापं सरः। राजधुरा। अक्षे तु अक्षधूः। दृढधूरक्षः। सखिपथः। रम्यपथो देशः।**

ऋक्, पुर्, अप्, धुर् और पथिन् जिस समास के अन्त में हों उस समासान्त से अ प्रत्यय होता है। किन्तु अक्ष (रथ चक्र का मध्यभाग) की धुरा के अर्थ में धुर् शब्द आया हो तो अ प्रत्यय नहीं होगा।

**अर्धर्चः** (आधा ऋचा)

'अर्धम् ऋचः' लौकिक विग्रह, 'अर्ध सु ऋच् ङस्' अलौकिक विग्रह में 'अर्ध नपुंसकम्' से 'अर्ध सु' का 'ऋच् ङस्' के साथ तत्पुरुष समास हुआ। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः 'प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप–अर्ध ऋच्। 'आद्गुणः' से अ +ऋ = 'अर्' गुण एकादेश–अर्ध अर् च्। 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय–अर्धर्च् अ। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से स्त्रीलिंग हुआ किन्तु 'अर्धर्चाः पुंसि च' से नपुंसकलिंग या पुल्लिंग। प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय–अर्धर्च सु। नपुंसकलिंग में 'अर्धर्चम्' बनेगा जबकि पुल्लिंग में 'अर्धर्चः' सिद्ध होगा।

**विष्णुपुरम्** (विष्णु का नगर)

'विष्णोः पूः' लौकिक विग्रह, 'विष्णु ङस् पुर् सु' अलौकिक विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपकिम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप–विष्णु पुर्। समास के अन्त में 'पुर्' होने से 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय–विष्णुपुर् अ। नपुंसकलिंग प्रथमा एकवचन में 'सु' प्रत्यय लगने पर, 'सु' का 'अम्' तथा 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप होकर 'विष्णुपुरम्' सिद्ध होगा।

**विमलापम्** (निर्मल जल वाला) सरः।

'विमला आपो यस्मिन् तत्' लौकिक विग्रह, 'विमल जस् अप् जस्' अलौकिक विग्रह में बहुव्रीहि समास, प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुप्' का लोप तथा दीर्घ होकर 'विमलाप्' बना। 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय होकर विमलाप बना तथा 'सरः' का विशेषण होने से नपुंसकलिंग एकवचन में 'सु' तथा 'सु' को 'अम्', पूर्वरूप होकर 'विमलापम्' सिद्ध होगा।

**राजधुरा** (राजा का भार)

'राज्ञः धूः' लौकिक विग्रह, 'राजन् ङस् धुर् सु' अलौकिक विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास, प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुप्' का लोप होकर 'राजन् धुर्' बना। 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से राजन् के 'न्' का लोप 'राजधुर्'। 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय होकर 'राजधुर' तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय लगने पर 'राजधुरा' बनेगा।

किन्तु अक्ष (रथ चक्र का मध्यभाग) की धुरा के अर्थ में 'धुर्' शब्द आया हो तो 'अ' प्रत्यय नहीं होगा। जैसे—

**अक्षधूः** (अक्ष या चक्र का धुर-मध्यभाग)

'अक्षस्य धूः' लौकिक विग्रह, 'अक्ष ङस् धुर् सु' अलौकिक विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास, प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुप्' का लोप होकर अक्षधुर्। यहाँ 'अक्ष' वाचक 'धुर्' शब्द अन्त में प्रयोग होने से 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय नहीं होगा। तब 'क्विप्' प्रत्यय होकर 'धुर्' के 'उ' को दीर्घ-अक्षधूर्। प्रथमा एकवचन में 'सु' का रुत्व विसर्ग होकर 'अक्षधूः' सिद्ध होगा।

**सखिपथः** (मित्र का मार्ग)

'सख्युः पन्था' लौकिक विग्रह, 'सखि ङस् पथिन् सु' अलौकिक विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास, प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुप्' का लोप, होकर सखिपथिन् बना। 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय होकर सखिपथिन् अ। 'यचिभम' से भसंज्ञा, 'अचोऽन्यादि टि' से 'इन्' की टि संज्ञा, 'भस्य टेर्लोपः' से टि 'इन्' का लोप सखिपथ् अ-सखिपथ। प्रथमा एकवचन में 'सु', रुत्व विसर्ग होकर 'सखिपथः' बनेगा।

**रम्यपथः देशः** (जिसमें मार्ग सुन्दर हो ऐसा देश)

'रम्याः पन्थानः यस्मिन् सः' लौकिक विग्रह, 'रम्य सु पथिन् सु' अलौकिक विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास, प्रातिपदिक संज्ञा, सुप् का लोप होकर रम्यपथिन् बना। शेष कार्य सखिपथः के तुल्य होकर रम्यपथः सिद्ध होगा।

**९९१. अक्ष्णोऽदर्शनात् ५।४।७६।।**

**अचक्षुःपर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात्समासान्तः। गवामक्षीव-गवाक्षः।**

जिस समास के अन्त में अक्षि शब्द आया हो और उसका चक्षु (नेत्र) भिन्न अर्थ हो तो उससे समासान्त 'अच्' (अ) प्रत्यय होता है।

**गवाक्षः** (गायों की आँख जैसा आँख वाला)

'गवाम् अक्षि इव' लौकिक विग्रह, 'गो आम् अक्षि सु' अलौकिक विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपकिम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से 'सुप्' का लोप-गो अक्षि। यहाँ 'अक्षि' का अर्थ नेत्र नहीं है अपितु उपमान रूप अतः 'अक्ष्णोऽदर्शनात्' सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय, 'अच्' के 'च्' का अनुबन्ध लोप-'गो' अक्षि अ। 'गो' के 'ओ' को 'अवङ्' आदेश, 'अवङ्' के 'ङ्' का अनुबन्ध लोप-ग्अव अक्षि अ। सवर्ण दीर्घ-गवाक्षि

अ। 'यस्येति च' से अक्षि के 'इ' का लोप-गवाक्ष् अ-गवाक्ष।प्रथमा एकवचन में 'सु', रुत्व विसर्ग होकर 'गवाक्ष:' सिद्ध होगा।

**९९२. उपसर्गादध्वन: ५।४।८५।।**

**प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथ:।**

उपसर्ग के बाद अध्वन् शब्द हो तो उससे समासान्त 'अच्' प्रत्यय होता है।

**प्राध्व:** (मार्ग पर दुर तक चला हुआ)

'प्रगत: अध्वानम्' लौकिक विग्रह, 'प्र अध्वन् अम्' अलौकिक विग्रह में 'अत्यादय: क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' वार्तिक से 'प्रादि' तत्पुरुष समास, प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुप्' का लोप तथा दीर्घ होकर 'प्राध्वन्' बना। 'उपसर्गादध्वन:' से समासान्त 'अच्' प्रत्यय, 'च' का अनुबन्ध लोप प्राध्वन् अ। 'यचिभम' से भसंज्ञा, 'अचोऽन्त्यादि टि' से 'अन्' की टि संज्ञा, 'नस्तद्धिते' से टि 'अन्' का लोप-प्राध्व् अ = प्राध्व। प्रथमा एकवचन में 'प्राध्व:' बनेगा।

**९९३. न पूजनात् ५।४।६९।।**

**पूजनार्थात् परेभ्य: समासान्त न स्यु:।**

पूजनार्थक (प्रशंसावाचक) शब्दों के बाद आये हुए शब्दों से समासान्त प्रत्यय नहीं होता है।

**(वार्तिक) स्वतिभ्यामेव । सुराजा । अतिराजा।**

सु और अति प्रशंसावाचक शब्दों के बाद पदों से समासान्त प्रत्यय नहीं होता है।

**सुराजा** (उत्तम राजा)

'शोभनो राजा' लौकिक विग्रह, 'सु राजन् सु' अलौकिक विग्रह में 'कुगतिप्रादय:' से प्रादि तत्पुरुष समास, प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुप्' का लोप होकर-सुराजन्। 'राजाह: सखिभ्यष्टच्' सूत्र से 'टच्' प्रत्यय प्राप्त था किन्तु यहाँ 'सु' पूजनार्थक है अत: 'न पूजनात्' सूत्र से उससे परे आये राजन् से 'टच्' प्रत्यय नहीं होगा। प्रथमा एकवचन में 'सु'-राजन् सु। 'हलङ्याब्भ्यो०' से 'सु' का लोप सुराजन्। 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' से नान्त उपधा को दीर्घ होकर सुराजान्। 'न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य' से राजन् के 'न्' का लोप 'सुराजा' सिद्ध हुआ।

**अतिराजा** (राजा का अतिक्रमण करने वाला)

'अतिक्रान्तो राजानम्' लौकिक विग्रह, 'अति राजन् अम्' अलौकिक विग्रह में 'अत्यादय: क्रान्ताद्यार्थे द्वितीयया' वार्तिक से तत्पुरुष समास, प्रातिपदिक संज्ञा, 'सुप्' का लोप होकर अतिराजन्। 'राजाह: सखिभ्यष्टच्' सूत्र से 'टच्' प्रत्यय प्राप्त था किन्तु यहाँ अति पूजन या श्रेष्ठता का वाचक है। अत: 'न पूजनात्' सूत्र से उससे परे आये राजन् से 'टच्' प्रत्यय नहीं होगा। प्रथमा एकवचन में अतिराजन् सु। 'हलङ्याब्भ्यो०' से 'सु' का लोप अतिराजन्। 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' से नान्त उपधा को दीर्घ होकर अतिराजान्। 'न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य' से राजन् के 'न्' का लोप 'अतिराजा' सिद्ध होगा।

इति समासान्त प्रकरणम्।

✤

## परीक्षोपयोगी प्रश्न

• **बहुविकल्पीय**

१. समास के कितने भेद है-

(क) तीन, (ख) चार, (ग) छः, (घ) पाँच।

२. जिस समास का कोई नाम नहीं दिया गया है उसे कहते है।

(क) केवलसमास, (ख) अव्ययभावी,

(ग) तत्पुरुष, (घ) द्वन्द्व समास।

३. नखैर्भिन्नः में कौन-सा समास है ?

(क) तृतीया त० समास, (ख) द्वितीया त० समास,

(ग) चतुर्थी त० समास, (घ) पंचमी त० समास।

४. चोरभयम् में किस सूत्र से समास हुआ है ।

(क) षष्ठी, (ख) शेषो बहुव्रीहौ,

(ग) पञ्चमी भयेन, (घ) सप्तमीशौण्डैः।

५. राजपुरुषः में कौन-सा समास है ।

(क) तृतीया त० समास, (ख) द्वितीया त० समास,

(ग) षष्ठी त०समास, (घ) चतुर्थी त० समास।

६. अक्षशौण्डः का अलौकिक विग्रह है।

(क) अक्षि सुप् शौण्ड सु, (ख) अक्ष सुप् शौण्ड सु,

(ग) अक्ष सु शौण्ड सु, (घ) अक्ष सुप् शौण्ड सप्।

७. तत्पुरुष समास के कितने भेद हैं।

(क) दो, (ख) तीन, (ग) चार, (घ) पाँच।

८. व्यधिकरण समास के कितने भेद हैं।

(क) दो, (ख) तीन, (ग) चार, (घ) छः।

९. समानाधिकरण तत्पुरुष समास को और किस नाम से जानते हैं।

(क) द्विगु समास, (ख) द्वन्द्व समास,

(ग) बहुव्रीहि समास, (घ) कर्मधारय समास।

१०. जब प्रथम पद संख्यावाचक हो तो कौन-सा समास होता है।

(क) द्विगु समास, (ख) द्वन्द्व समास,

(ग) बहुव्रीहि समास, (घ) कर्मधारय समास,

११. नीलोत्पलम् में किस सूत्र से समास हुआ है।
(क) विशेषण विशेष्य बहुलम्, (ख) कर्तृकरणेकृता बहुलम्,
(ग) स नपुसंकम्, (घ) द्विगुश्च।

१२. उपमानवाचक पद का साधारण धर्मवाले पद के साथ समास होता है।
(क) द्विगु समास, (ख) द्वन्द्व समास,
(ग) बहुव्रीहि समास, (घ) कर्मधारय समास।

१३. जब किसी समास में पूर्वपद की विभक्ति का लोप न हो तो वह कहलाता है।
(क) केवल समास, (ख) अलुक् त० समास,
(ग) बहुव्रीहि समास, (घ) उपपद त० समास।

१४. परस्मैपदम्, आत्मनेपदम् और यधिष्ठिरः में कौन-सा समास है ।
(क) अलुक् त० समास, (ख) केवल समास,
(ग) बहुव्रीहि समास, (घ) उपपद त० समास।

१५. कुम्भकारः में कौन-सा समास है।
(क) केवल समास, (ख) अलुक् त० समास,
(ग) उपपद त० समास, (घ) कर्मधारय समास।

१६. कुपुरुषः पद में कौन-सा समास है।
(क) गति त० समास, (ख) प्रादि त० समास,
(ग) बहुव्रीहि समास, (घ) कर्मधारय समास,

१७. अहोरात्रः में समास का नाम बताइये।
(क) द्विगु समास, (ख) द्वन्द्व समास,
(ग) बहुव्रीहि समास, (घ) कर्मधारय समास।

१८. द्विरात्रम् और त्रिरात्रम् में कौन-सा समास है ।
(क) बहुव्रीहि समास, (ख) द्वन्द्व समास,
(ग) द्विगु समास, (घ) कर्मधारय समास।

१९. त्रयाणां भुवनानां समाहारः इति त्रिभुवनम् में कौन-सा समास है ।
(क) केवल समास, (ख) समाहार द्विगु,
(ग) उपपद त० समास, (घ) कर्मधारय समास।

२०. जिस समास में प्रायः अन्यपद की प्रधानता होती है वह कहलाता है।
(क) अव्ययीभाव समास, (ख) द्वन्द्व समास,
(ग) बहुव्रीहि समास, (घ) कर्मधारय समास।

**उत्तरमाला**

१. (घ) २. (क) ३. (क) ४. (ग) ५. (ग) ६. (ख) ७. (क) ८. (घ) ९. (घ) १०. (क) ११. (क) १२. (घ) १३. (ख) १४. (क) १५. (ग) १६.(ख) १७. (क) १८. (ग) १९. (ख) २०. (ग)।

- **अति लघु उत्तरीय**

**प्रश्न १. अष्टाध्यायी ग्रन्थ के रचनाकार कौन हैं?**

उत्तर—महर्षि पाणिनी।

**प्रश्न २. पाणिनी-प्रणीत अष्टाध्यायी में कितने अध्याय हैं?**

उत्तर—आठ अध्याय।

**प्रश्न ३. पाणिनी-प्रणीत अष्टाध्यायी के प्रत्येक अध्याय में कितने पाद हैं।**

उत्तर—चार पाद।

**प्रश्न ४. अष्टाध्यायी में सूत्रों की संख्या कितनी है?**

उत्तर—३९७८

**प्रश्न ५. अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय का प्रथम सूत्र क्या है?**

उत्तर—वृद्धिरादैच्।

**प्रश्न ६. लघुसिद्धान्तकौमुदी ग्रन्थ के रचनाकार कौन हैं?**

उत्तर—आचार्य वरदराज।

**प्रश्न ७. आचार्य वरदराज की कौन-कौन रचनाएँ हैं?**

उत्तर—१. लघुसिद्धान्त कौमुदी २. मध्यसिद्धान्त कौमुदी ३. सारकौमुदी।

**प्रश्न ८. सूत्र कितने प्रकार के होते है और कौन कौन-से हैं?**

उत्तर—छः १. संज्ञा २. परिभाषा ३. विधि ४. नियम ५. अतिदेश ६.अधिकार।

**प्रश्न ९. संहिता संज्ञा किस सूत्र से होती है?**

उत्तर—परः सन्निकर्ष संहिता।

**प्रश्न १०. पद संज्ञा किस सूत्र से होता है?**

उत्तर—सुप्तिङन्तं पदम्।

**प्रश्न ११. संयोगसंज्ञा विधायक सूत्र है?**

उत्तर—हलोऽनन्तरा संयोगः।

**प्रश्न १२. घि संज्ञाविधायक सूत्र है।**

उत्तर—शेषो घ्यसखि।

**प्रश्न १३. प्रातिपदिकसंज्ञा विधायक सूत्र कितने है और कौन-कौन हैं?**

उत्तर—दो १. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् २. कृत्तद्धितसमासाश्च।

**प्रश्न १४. समास कितने प्रकार है और कौन-कौन हैं?**

उत्तर—केवलसमास।

**प्रश्न १५. भूतपूर्वः में कौन-सा समास होगा?**

उत्तर—केवलसमास।

**प्रश्न १६. पूर्वपद की प्रधानता किस समास में होती है?**

उत्तर—अव्ययीभाव समास।

**प्रश्न १७. नपुंसकत्व विधि करने वाला कौन-सा सूत्र है?**

उत्तर—अव्ययीभावश्च।

**प्रश्न १८. अधिगोपम् में कौन-सा समास है?**

उत्तर—अव्ययीभाव समास।

**प्रश्न १९. समास में विग्रह कतने प्रकार का होता है?**

उत्तर—दो, १. लौकिक २. अलौकिक

**प्रश्न २०. पदसम्बन्धी विधि किससे होती है?**

उत्तर—समर्थ पदों से।

**प्रश्न २१. सुबन्त का किसके साथ समास होता है?**

उत्तर—सुबन्त के साथ।

**प्रश्न २२. समास में किये गये पदों को कहते हैं?**

उत्तर—समस्तपद या सामासिक पद।

**प्रश्न २३. पदों को मिलाने की प्रक्रिया कहलाती है?**

उत्तर—समसनम् या समास।

**प्रश्न २४. वृत्तियाँ कितने प्रकार की होती हैं?**

उत्तर—पाँच।

**प्रश्न २५. समास में कम-से-कम कितने पदों का होना आवश्यक है?**

उत्तर—दो।

**प्रश्न २६. अव्ययीभाव समास में यथा शब्द के कितने अर्थ हैं और कौन-कौन-से हैं?**

उत्तर—चार, १. योग्यता २. वीप्सा ३. पदार्थानतिवृत्ति ४. सादृश्य।

**प्रश्न २७. अनुविष्णुः का समास विग्रह है।**

उत्तर—विष्णोः पश्चाद्।

**प्रश्न २८. यथाशक्ति में कौन-सा समास है?**

उत्तर—अव्ययीभाव समास।

**प्रश्न २९. पंचगङ्गम् में कौन-सा समास है?**

उत्तर—अव्ययीभाव समास।

**प्रश्न ३०. पंचगङ्गम् में किस सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ है?**

उत्तर—नदीभिश्च।

**प्रश्न ३१.अव्ययीभाव समास में बने हुए समस्त पद का लिंग और वचन क्या रहता है?**

उत्तर—नपुंसकलिंग एकवचन।

**प्रश्न ३२. सतृणम् का क्या अर्थ है?**

उत्तर—तृणमपि अपरित्यज्य।

**प्रश्न ३३. जिस समास में प्रायः उत्तरपद की प्रधान होती है।**

उत्तर—तत्पुरुष समास।

**प्रश्न ३४. कृष्णाश्रितः में कौन-सा समास है?**

उत्तर—द्वितीया तत्पुरुष समास।

**प्रश्न ३५. शङ्कुलाखण्डः का समास-विग्रह है।**

उत्तर—लौकिक विग्रह-शङ्कुलया खण्डः, अलौकिक विग्रह-शङ्कुला टा खण्डः सु।

**प्रश्न ३६. बहुव्रीहि समास कितने भेद है?**

उत्तर—दो, १. व्यधिकरण २. समानाधिकरण ।

**प्रश्न ३७. कण्ठेकालः, पीताम्बरः और चित्रगुः का समास-विग्रह और समास का नाम बताइये ?**

उत्तर—कण्ठे कालः यस्य सः, पीतम् अम्बरं यस्य सः और चित्रा गावो यस्य सः—बहुव्रीहि समास।

**प्रश्न ३८. स्त्रीप्रमाणः का लौकिक विग्रह क्या है?**

उत्तर—स्त्री प्रमाणी यस्य सः।

**प्रश्न ३९. जिस समास में प्रायः सभी पद प्रधान होते हैं वह कहलाता है।**

उत्तर—द्वन्द्व समास।

**प्रश्न ४०. द्वन्द्व समास में किसकी प्रधानता होती है?**

उत्तर—उभयपद।

**प्रश्न ४१. द्वन्द्व समास के कितने प्रकार हैं?**

उत्तर—तीन, १. इतरेतर २. समाहार ३.एकशेष।

**प्रश्न ४२.राजदन्तः पद का समास-विग्रह तथा समास का नाम बताइये?**

उत्तर—दन्तानां राजा-तत्पुरुष समास।

**प्रश्न ४३. मातापितरौ पद का विग्रह वाक्य क्या है?**

उत्तर—माता च पिता च।

**प्रश्न ४४. पाणिपादम् में किस सूत्र से कौन-सा समास हुआ है?**

उत्तर—चार्थे द्वन्द्वः सूत्र से समाहार द्वन्द्व समास।

**प्रश्न ४५. वाक्त्वचम् का विग्रह वाक्य और समास का नाम क्या है?**

उत्तर—वाक् च त्वच् च-द्वन्द्व समास।

**प्रश्न ४६. साग्नि शब्द का अलौकिक विग्रह क्या है?**

उत्तर—अग्नि ग्रन्थ पर्यन्तम् अधीते।

**प्रश्न ४७. बहुव्रीहि समास किस सूत्र से होता है?**

उत्तर—अनेकमन्यपदार्थो।

**प्रश्न ४८. अर्धर्चः पुंसि सूत्र क्या करता है?**

उत्तर—पुल्लिंग और नपुंसकलिंग।

- **लघु उत्तरीय**

**प्रश्न १.समास किसे कहते हैं और वे कितने प्रकार के होते हैं?**

उत्तर संकेत—पृष्ठ संख्या ९ पर देखें।

**प्रश्न २. वृत्ति किसे कहते है और कितने प्रकार की होती है?**

उत्तर संकेत—पृष्ठ संख्या १२ पर देखें।

**प्रश्न ३. विग्रह किसे कहते है और वह कितने प्रकार का होता है?**

उत्तर संकेत—पृष्ठ संख्या १२ पर देखें।

**प्रश्न ४. 'समर्थः पदविधिः', सह सुपा सूत्र का अर्थ स्पष्ट करें?**

उत्तर संकेत—पृष्ठ संख्या ११ व १२ पर देखें।

**प्रश्न ५. अव्ययीभाव समास करने वाला मुख्य सूत्र कौन सा है? नाम लिखें एवं व्याख्या करें।**

उत्तर संकेत—पृष्ठ संख्या १३ पर देखें।

**प्रश्न ६. 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र की व्याख्या करें एवं 'अधिहरि' का सूत्रोल्लेखपूर्वक रूप सिद्ध करें।**

उत्तर संकेत—पृष्ठ संख्या १४ पर देखें।

**प्रश्न ७. सूत्रोल्लेखपूर्वक रूप सिद्ध करें-अधिगोपम्, उपकृष्णम्, अनुरूपम्।**

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या १४, १५ व १८ पर देखें।

**प्रश्न ८. 'नदीभिश्च सूत्र' का अर्थ स्पष्ट करते हुए 'पंचगंगम्' का सूत्रनिर्देशपूर्वक रूप सिद्ध करें?**

उत्तर संकेत—पृष्ठ संख्या २२ पर देखें।

**प्रश्न ९. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः सूत्र का अर्थ स्पष्ट करते हुए 'उपशरदम्' का रूप सिद्ध करें।**

उत्तर संकेत—पृष्ठ संख्या २३ पर देखें।

**प्रश्न १०. उपसर्जन संज्ञा एवं अव्ययसंज्ञा विधायक सूत्रों का अर्थ स्पष्ट करें।**

उत्तर संकेत—पृष्ठ संख्या १४ पर देखें।

**प्रश्न ११. सोदाहरण सूत्र का अर्थ स्पष्ट करें—**

*कर्तृकरणे कृता बहुलम् , पंचमी भयेन, अर्ध नपुंसकम्।*

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या २९, ३१ व ३४ पर देखें।।

**प्रश्न १२. सूत्रोल्लेखपूर्वक रूप सिद्ध करें—**

*पंचगवम्, घनश्यामः,अहोरात्रः।*

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ३८, ३९ व ४८ पर देखें।

**प्रश्न १३. सूत्रोल्लेखपूर्वक रूप सिद्ध करें—**

*कृष्णाश्रितः, चोरभयम्, राजपुरुष।*

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या २७, ३१ व ३३ पर देखें।

**प्रश्न १४. बहुव्रीहि समास करने वाला सूत्र कौन-सा है। सोदाहरण व्याख्या करें।**

उत्तर संकेत—पृष्ठ संख्या ५३ पर देखें।

**प्रश्न १५. सोदाहरण सूत्र की व्याख्या करें—**

*अनेकमन्येपदार्थ, सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहो, पूर्णाद् विभाषा।*

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ५३, ५४ व ६२ पर देखें।

**प्रश्न १६. सूत्र निर्देशपूर्वक रूप सिद्ध करें—**

*व्यूढोरस्कः, चित्रगुः, पीताम्बरः।*

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ६३, ५७ व ५५ पर देखें।

**प्रश्न १७. द्वन्द्व समास विधायक सूत्र का नाम लिखे एवं व्याख्या करें।**

उत्तर संकेत—पृष्ठ संख्या ६४ पर देखें।

**प्रश्न १८. सोदाहरण सूत्र का अर्थ स्पष्ट करें—**

*पिता मात्रा, अजाद्यदन्तम्, द्वन्द्वे घि।*

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ६७, ६६ व ६६ पर देखें।

**प्रश्न १९. सूत्रोल्लेखपूर्वक रूप सिद्ध करें—**

*हरिहरौ, पितरौ, पाणिपादम्।*

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ६६, ६७ व ६८ पर देखें।

**प्रश्न २०. अक्ष्णोऽदर्शनात्, न पूजनात् सूत्रों का अर्थ लिखते हुए 'गवाक्षः' और 'सुराजा' का रूप सिद्ध करें।**

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ७१ व ७२ पर देखें।

- **दीर्घ उत्तरीय**

**प्रश्न १. समर्थः पदविधिः, प्राक्कडारात् समासः, सह सुपा सूत्रों का अर्थ लिखते हुए भूतपूर्वः, का रूप सिद्ध करें।**

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ११ व १२ पर देखें।

**प्रश्न २. सूत्रोंल्लेखपूर्वक रूप सिद्ध करें—निर्मक्षिकम्, इतिहरि, अनुविष्णु, सहरि, यथा शक्ति।**

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या १७, १८ व १९ पर देखें।

**प्रश्न ३. सोदाहरण सूत्र का अर्थ स्पष्ट करें—**

*तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्, अव्ययी भावे चाऽकाले, षष्ठी, द्विगुरेकवचनम, विशेषणं विशेष्येण बहुलम्।*

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या १५, १९, ३३ व ३८ पर देखें।

**प्रश्न ४. सूत्रोल्लेखपूर्वक रूप सिद्ध करें—उपजरसम्, उपचर्मम्, शङ्कुलाखण्डः, हरित्रातः, राजपुरुष।**

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या २४, २५, २८, २९ व ३३ पर देखें।

**प्रश्न ५. निम्नांकित सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। कुगतिप्रादयः, उपपदमतिङ्, परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः, शेषो बहुव्रीहिः, द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः।**

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ४०, ४५, ५०, ५३ व ५९ पर देखें।

**प्रश्न ६. निम्नांकित रूपों की सूत्रोल्लेखपूर्वक सिद्धि करें—**

*अर्धपिप्पली, अनश्वः, कुपुरुषः कुम्भकारः, महाराजः।*

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ३४, ४०, ४१, ४५ व ४९ पर देखें।

**प्रश्न ७. सोदाहरण सूत्र का अर्थ स्पष्ट करें—कस्कादिषु च, उपमानानि सामान्य वचनैः; निष्ठा, शेषाद विभाषा, चार्थे द्वन्द्वः।**

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ६२, ३९, ६३, ६३ व ६५ पर देखें।

**प्रश्न ८. सूत्रनिर्देशपूर्वक रूप सिद्ध करें—**

*निष्कौशाम्बिः, जलजाक्षी, व्यूढोरस्कः, ईशकृष्णौ, वाक्त्वचम्।*

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ४४, ५९, ६३, ६७ व ६८ पर देखें।

**प्रश्न ९. सोदाहरण सूत्र का अर्थ स्पष्ट करें—राजदन्तादिषु परम्, द्वन्द्वे घि, अक्ष्णोऽदर्शनात्, उपसर्गादध्वनः, न पूजनात्।**

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ६५, ६६, ७१, ७२ व ७२ पर देखें।

**प्रश्न १०. सूत्रोल्लेखपूर्वक रूप सिद्ध करें—**

*राजदन्तः, धर्मार्थौ, त्वक्स्रजम्, वाक्त्विषम्, सुराजा।*

उत्तर संकेत—क्रमशः पृष्ठ संख्या ६६, ६६, ६९, ६९ व ७२ पर देखें।

✤

**युवराज पब्लिकेशन्स**

42, लता कुंज, मथुरा रोड, आगरा-282002

मो० : 09410663109, 08477062070

E-mail : yuvrajpublications@gmail.com